

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

वर्ष : 08, अंक : 32, अक्टूबर-दिसंबर 2021

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

संस्कृति अंक

मूल्य : 50 रुपये



विद्यार्थी मंच

उस पार से.....

महादेवी वर्मा

(26 मार्च 1907 - 11 सितंबर 1987)



संस्कृति का स्वभाव मूल्यात्मक या धनात्मक ही होने के कारण उसे निषेधात्मक या ऋणात्मक रूप में अनुभव नहीं किया जा सकता। हम किसी भी सांस्कृतिक मूल्य को उसके अभाव में नहीं अनुभव करते। उदाहरण के लिए, हम सामाजिक मूल्य के रूप में सत्य का अनुभव कर सकते हैं, परंतु उसका अभाव, असत्य हमारे अनुभूति क्षेत्र से बाहर बुद्धि का विषय है।

संस्कृति के विकास-क्रम में प्राप्त मूल्य, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक आदि विविध क्षेत्रों में विभाजित होकर भी व्यक्ति और समष्टि की दृष्टि से एक संलिष्ट और व्यापक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

इन जीवन मूल्यों के साथ अनेक मान्यताओं तथा प्रयोगजनित रूढ़ियों का संक्रमित हो जाना अनिवार्य है। अतः प्रत्येक युग में नवीन परिस्थितियों की कसौटी पर खरे उतरने पर ही वे अपने मूलरूप में प्रतिष्ठित हो पाते हैं।

महादेवी साहित्य समग्र

मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

वर्ष-8, अंक- 32, अक्टूबर-दिसंबर 2021

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा
 प्रकाशक : हावड़ा विद्यार्थी मंच
 प्रबंध संपादक : सुशील कुमार पांडेय
 कला संपादक : शुभागता श्रीवास्तव
 आकल्पक : लखनपति झा
 प्रूफ संशोधक : विनोद यादव

परामर्श एवं विशेष सहयोग :

प्रो. दामोदर मिश्र : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय
 डॉ. कृष्ण कुमार : अध्यक्ष, गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, (बर्मिंघम, यू.के.)
 डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल
 डॉ. अरुण कुमार : प्राक्तन प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यालय
 डॉ. रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर
 डॉ. निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल
 डॉ. रामप्रवेश रजक : हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :

विनीता लाल, पार्वती शॉ एवं परमजीत पंडित

संपर्क एवं प्रसार :

चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229
 कुणाल किशोर (के.वि. हिमाचल प्रदेश): 7998837003

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

पीयर रिव्यूड टीम :

डॉ. धूपनाथ प्रसाद : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
 डॉ. विश्वजीत भद्र : प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
 प्रो. मोहम्मद फ़रियाद : प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद
 डॉ. सुनील कुमार 'सुमन' : प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
 प्रो. मंजु रानी सिंह : विश्वभारती, शांतिनिकेतन
 प्रो. अरुण होता : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात
 प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय
 डॉ. सत्या उपाध्याय : प्राचार्य, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता
 डॉ. अंजनी कुमार झा : एसोसिएट प्रोफेसर, मीडिया स्टडीज, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)
 डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK
 BURRABAZAR, KOLKATA- 700007,
 IFSC CODE- HDFC0000219

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन
 सलकिया, हावड़ा-711106, पश्चिम बंगाल
 संपर्क - 033-26751686, 9831497320,
 9681105070
 ई-मेल - muktanchalpatrika@gmail.com
 sinhameera48@gmail.com

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट,
 कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य : एक अंक - 50 रुपये

सदस्यता शुल्क : वार्षिक- 500 रुपये, आजीवन-2500 रुपये

संस्थाओं के लिए : वार्षिक-550 रुपये, आजीवन-3000रु.

डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

अवस्थिति

शोध	6	संस्तुति	
		संस्मृति :	
	7	रामनिहाल गुंजन	आनन्द कुमार सिन्हा : एक संस्मृति
	9	डॉ. पंकज साहा	वे आनंद के प्रतिरूप थे
समीक्षा	10	रावेल पुष्प	यादों में बसे रहेंगे गीतेश शर्मा और उनके साहित्यिक अङ्के
	14	प्रताप सहगल	अजहर की रौशनी दिखायेगी राह
	20	पार्वती शॉ	दूसरी अजहर आलम बनूँ
	24	सेवाराम त्रिपाठी	ओम भारती : बेचैन रूह और प्यास का सफर
	26	डॉ. सुधा उपाध्याय	विनोद दुआ को याद करते हुए
	29	इतु सिंह	प्रखर और जीवंत व्यक्तित्व मधुलता गुप्ता
		आलेख :	
	31	डॉ. अमरनाथ	सरकारी सेवाओं में हिंदी
सृजन	35	डॉ. ऋषिकेश राय	उत्तर संरचनावाद का भाषिक परिप्रेक्ष्य
	40	हेमन्त गुप्ता	अज्ञेय का जीवन-बोध और शोध
	44	खान मनजीत भावड़िया	लोक साहित्य में नाटक
		विमर्श :	
न	47	सविता शर्मा	साहित्यिक विमर्श के कुछ नए सवाल
		शोधार्थी की कलम से :	
	52	रश्मी नरताम	उदास मौसम के खिलाफ
	58	डॉ. नीतू रानी	एक टुकड़ा इतिहास (1975) गोपाल उपाध्याय
संचार		समय की शिला पर :	
	61	राज्यवर्द्धन	मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है
		कविता :	
	65	शंभुनाथ	पाँच कविताएँ
	68	मृत्युंजय	पाँच कविताएँ
	72	विमल किशोर	रोटी : तीन कविताएँ

शोध	74 अभय शुक्ला	गजल
	कहानी :	
	77 सिद्धेश	धब्बे और सेमिनार
	79 सरिता खोवाला	त्रिशूल का रक्षक
समीक्षा	82 हंसा दीप	कूच
	लघुकथा :	
	87 संजय रॉय	खज़ाना (लघुकथा)
	88 पवन शर्मा	गरम हवा
सृजन	व्यंग्य :	
	89 मदन गुप्ता सपाटू	दास्तान-ए-सर्टिफिकेट
	समीक्षा :	
	91 अवधेश कुमार सिन्हा	कुछ दर्द मिटाने बाकी हैं / कुछ फ़र्ज़ निभाने बाकी हैं
संचार	97 डॉ. कमल कुमार	जागरुक अकेलेपन का जीवंत दस्तावेज- 'तुम नहीं थे'
	100 डॉ. वन्दना गुप्ता	विविध आएँ की कवयित्री : डॉ मनीषा झा
	104 डा. पंकज साहा	शतवर्ष में रेणु
	संचार :	
संस्मरण	109 देवेश पाण्डेय, डॉ. अजय कुमार सिंह, सोनिया बत्रा	अंतरराष्ट्रीय मीडिया में कोविड -19 महामारी की रिपोर्टिंग
	अभिमत :	
	118 डॉ. प्रेम जनमेजय बुलाकी शर्मा मौगन मिश्र 'मार्तंड' श्रवण कुमार उर्मलिया डॉ. वीरेन्द्र परमार डॉ. प्रतिमा प्रसाद	प्रतिक्रियाएँ (व्यंग्य-विशेषांक)
	गतिविधियाँ :	
र	121 पार्वती रघुनंदन	विद्यार्थी मंच
	122 मधु सिंह	हिंदी मेला


संस्तुति

इस बार मुक्तांचल परिवार के शीर्ष सदस्य प्रकाशक आनन्द कुमार सिन्हा नहीं रहे हैं। विगत 6 नवम्बर, 2021 को उनका दिवंगत होना हम सभी को गहरे अवसाद में छोड़ गया है। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि उनके 'मिशन' को जारी रखने में हैं।

अस्तु, हम 'मुक्तांचल' द्वारा चलाए जाने वाले अभियान को कभी रुकने न देने का संकल्प लेते हैं।

इस अंक में विशेष रूप से संस्मृतियों को शामिल किया गया है, विगत दो वर्ष का समय महामारी के भयंकर चपेट में अपने तमाम प्रियजनों के खोने का रुदन लिए हुए जैसे सहम कर काठ हो गया है। स्मृतियों को कुरेदने पर जीवित क्षणों की जीवंतता कम से कम वर्तमान के अवसाद को अतीत की हरियाली का लेप देती है, और सर्जनात्मकता स्वतः मुखर हो उठती है। अतीत हुए व्यक्तित्व को संस्मृति की झिलमिल रोशनी से उजागर करने पर प्रेरणा के विपुल स्रोत मिल जाते हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी सकारात्मक पथ का अनुमोदन करते हैं। मुक्तांचल के अगले अंकों में भी संस्मृति लेखन एक स्थायी स्तंभ के रूप में जारी रहेगा। सुधी कलमकारों से अनुरोध है कि वे समय के गर्द-गुबार से जूझने वाले सर्जनात्मक संकल्प से युक्त व्यक्तित्वों के संस्मरण अवश्य भेजें।

'मुक्तांचल' के प्रकाशन की यात्रा आपात काल में 'अभिव्यंजना' के प्रकाशन से शुरू हुई। अभिव्यंजना का प्रथम अंक अप्रैल 1976 में प्रकाशित हुआ, उन दिनों अभिव्यक्ति की आजादी आपात-काल की मुट्ठी में बंद थी, तमाम लघुपत्रिकाएँ जो नागरिक स्वतंत्रता और मानव अधिकारों की पैरोकार थीं जोखिम के दौर से गुजर रही थीं, जब अक्षर-अक्षर इबारतों पर काली लकीरें फेर दी जाती थीं तभी 'अभिव्यंजना' के मंच से 'जनसाहित्य सम्मेलन' की तैयारी कर ली गई और जनवरी 1977 में अखिल भारतीय स्तर पर सैंकड़ों लेखकों ने मिलकर चार दिन व्यापी सम्मेलन कर काले कानूनों का विरोध किया, 'अभिव्यंजना' के तीसरे अंक में इस सम्मेलन की संपूर्ण रपट प्रकाशित की गई थी। 1978-79 में 'मुक्तांचल' के कुछ अंक निकले, उस समय तक प्रायः राजबंदियों की मुक्ति हो चुकी थी एवं 'प्रेस सेंसरशिप' के काले कानून को निरस्त कर दिया गया था। हम अपनी नई लड़ाई में कहीं जुड़ और बिखर रहे थे... एक लंबा अंतराल और फिर से 2014 में 'अभिव्यंजना' के दो अंक और 'मुक्तांचल' के अब तक के अंकों का सिलसिला जारी है। इस बार जब बराबरी की लड़ाई के एक योद्धा आनन्द सिन्हा हम सबसे दूर चले गए हैं, हमें उनकी राह को और भी मजबूती से सशक्त करना है।



संपादक

आनन्द कुमार सिन्हा : एक संस्मृति

रामनिहाल गुंजन

मुझे अपने कोलकाता प्रवास का जब भी स्मरण होता है तो डॉ. मीरा सिन्हा और उनके पति आनन्द कुमार सिन्हा की याद जरूर आने लगती है। एक लंबे समय से मेरा कोलकाता आना जाना होता रहा और जब भी वहाँ जाता तो मेरा निवास उन्हीं के यहाँ होता। वे मुझे एक अलग कमरा दे देते और मेरे खाने-पीने की व्यवस्था कर देते। उसके बाद मेरे कोलकाता के मित्रों श्रीनिवास शर्मा, विमल वर्मा, शंभुनाथ, ध्रुवदेव मिश्र 'पाषाण', कपिल आर्ष, परशुराम आदि से मिलने का सिलसिला शुरू हो जाता। सुबह की चाय और नाश्ता सिन्हा दंपति के साथ ही होता। दोपहर का भोजन भी उन्हीं के साथ होता। बीच-बीच में हमलोग आपस में बातचीत करते, और उन दिनों की याद भी करते जब वर्ष 1977 में आपात काल में लागू काले कानूनों के खिलाफ अखिल भारतीय जन-साहित्य सम्मेलन आयोजित हुआ था। उस सम्मेलन में मैं बिहार से कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, जितेंद्र राठौर और नचिकेता के साथ शामिल होने आए था।

सम्मेलन के आयोजकों में आनंद कुमार सिन्हा, मीरा सिन्हा, ध्रुवदेव पाषाण और शंभुनाथ थे। उस सम्मेलन के कारण कोलकाता में बड़े पैमाने पर लेखकों का जमावड़ा हुआ और सम्मेलन का कार्यक्रम दो दिनों तक शानदार ढंग से चलता रहा। दरअसल इसके पहले वहाँ कहानी और कविता को लेकर कई यादगार सम्मेलन हो चुके थे, जिनमें जो लेखक शामिल हुए थे आज भी चर्चा करते थकते नहीं, लेकिन मेरे लिए तो यही सबसे बड़ा सम्मेलन था।

यों उस सम्मेलन से हिंदी साहित्य में विकास को जिन दो चीजों से बल मिला उनमें पहली थी डॉ. मीरा सिन्हा के संपादन में निकली पत्रिका 'अभिव्यंजना' जो बाद में 'मुक्तांचल' के नाम से प्रकाशित होने लगी तथा जो आज भी निकल रही है। दूसरी चीज थी पाषाण की कविता-पुस्तक 'कविता तोड़ती है', जिसका प्रकाशन सम्मेलन के अवसर पर ही हुआ था। इन दोनों का जिक्र मैं इसलिए कर रहा हूँ कि इनसे आज भी मेरा सरोकार किसी न किसी रूप में बना हुआ है। बहरहाल पत्रिका के बहाने आज भी मेरा संबंध सिन्हा-परिवार से है। मीरा जी जब भी किसी अंक के लिए मुझसे रचना या लेख के लिए आग्रह करतीं, तो उसमें आनंद कुमार सिन्हा जी का विशेष आग्रह रहता और मैं सहर्ष अपना लेख उन्हें भेज देता। इधर जब आनंद कुमार जी के नहीं रहने का एकाएक समाचार मिला तब मैं स्तब्ध रह गया। उनके साथ बिताये क्षण मुझे याद आने लगे। अभी दो वर्ष पहले आरा में मेरा सम्मान हुआ, उससे दोनों दंपति उत्साहित थे। उन्होंने इस अवसर पर अनामंत्रित रह जाने को लेकर मुझसे उलाहना भी की, यह उनका मेरे प्रति स्नेह और सम्मान का भाव ही था जो मुझे बराबर मिलता रहा। मेरी मीरा जी से जब भी बातचीत होती तो उनका भी स्वास्थ्य समाचार मैं जरूर पूछता और उनके स्वस्थ होने की सूचना से मैं आश्वस्त भी हो जाता।

पिछले दिनों जब 'मुक्तांचल' के एक अंक में आनंद कुमार सिन्हा की एक कहानी प्रकाशित हुई तो उसे पढ़कर मुझे अति प्रसन्नता हुई। मुझे नक्सलबाड़ी के वे दिन याद आ गए जब चारु मजूमदार के नेतृत्व में बंगाल में आन्दोलन और जोर से शुरू हुआ और बंगला के अनेक कवियों का उससे प्रभावित होकर क्रांतिकारी कविताएँ लिखना और उस दौरान पुलिस दमन के शिकार हुए नवयुवकों को लेकर लिखे गए महाश्वेता देवी के उपन्यास 'हजार चौरासी की माँ' की याद आना स्वाभाविक

ही था। ऐसे में मुझे आनंद कुमार सिन्हा की उस कहानी की प्रासंगिकता का ध्यान आए और मैं उनकी और कहाँनियाँ पढ़ना चाहता था। संभव है, यदि मीरा जी मुक्तांचल का उन पर केंद्रित कोई अंक निकाले तो उसमें उनकी अन्य कहाँनियों और कविताओं को भी स्थान दें। इस प्रसंग में, मुझे याद है, मैं आनंद कुमार जी को कभी एक कथाकार के रूप में देख नहीं पाया था और न इसकी कभी चर्चा ही हुई। अगर इस कहानी को मैंने पहले पढ़ा होता तो मुझे उनके कथाकार वाले व्यक्तित्व में मुझे विशेष रुचि होती। मैं तो उन्हें एक साहित्यानुरागी ही समझता रहा और उनके अधिवक्ता के पेशे से ही परिचित रहा। इसलिए मैं जब भी कोलकाता जाता तो अक्सर उनके साथ चाय पीने और खाना खाने का अवसर मिल जाता। मीरा जी भी कॉलेज चली जातीं तो मेरे लिए दोस्तों से मिलने के लिए बाहर निकलना जरूरी हो जाता। मैं प्रतिदिन बाहर निकल कर कभी जी.टी. रोड स्थित शंभुनाथ के आवास पर जाता तो वहाँ शंभुनाथ के अलावा कई मित्रों से भेंट हो जाती। मुझे स्मरण है एक बार मैं पाषाण जी के स्कूल में चला गया था और उन्हें लेकर श्रीनिवास शर्मा और गोपाल प्रसाद के साथ पार्क स्ट्रीट स्थित स्वाधीनता कार्यालय गया था, जहाँ इसराइल और अरुण माहेश्वरी से भेंट हुई थी। जब मैं पहली बार कोलकाता गया था तब 'स्वाधीनता' के संपादक अयोध्या प्रसाद सिंह से वहीं भेंट हुई थी। तब वहाँ से 'कलम' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था। एक अंक में कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह की कोई कविता प्रकाशित होने वाली थी, लेकिन उसे छपने से इसलिए रोक दिया गया था कि उसमें नक्सलबाड़ी की धमक सुनाई पड़ने का जिक्र था। जब अयोध्या सिंह ने उसका जिक्र किया तो मैंने बतलाया कि

अक्सर जब कोई बड़ी घटना घट जाती है तो लंबे समय तक प्रभाव रहता है। वह प्रभाव भूमिगत होकर भी लोगों पर अपना असर डालता रहता है। इस बात से सहमत होकर अयोध्या प्रसाद सिंह ने उस कविता को प्रकाशित होने की अनुमति दे दी थी।

अगली बार मैं जब कोलकाता गया तो मीरा जी के आवास में ही ठहरा। आनंद कुमार जी से इस बार ज्यादा बातचीत हुई। चूंकि वो वैचारिक दृष्टि से काफी संपन्न थे, अतः बीच-बीच में उनसे सहमत-असहमत होते हुए मैंने भी उनसे काफी बातें की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अगर वे अपने अनुभवों को आधार बनाकर किसी उपन्यास की रचना करें तो बेहतर होगा। उस समय तो उन्होंने लिखने का आश्वासन भी दिया। मैं उनसे इस बात की चर्चा किया करता था कि जब मैंने देखा कि ज्ञानरंजन जो एक अच्छे कथाकार होने के बावजूद कम ही कहाँनियाँ लिखे और जब उन्होंने अपनी पुस्तक 'ज्ञानरंजन की कहाँनियाँ' मेरे पास भेजी तो मैंने देखा कि उनकी चर्चित कुछ ही कहाँनियाँ हैं। अतः कहाँनियों के साथ-साथ मैंने उन्हें उपन्यास लिखने की सलाह दी तो वे सहमत हो गए और एक उपन्यास पर काम करना उन्होंने शुरू भी किया, लेकिन आज तक वह उपन्यास पूरा नहीं हो सका और इसके लिए आज भी खेद व्यक्त करते रहते हैं। मेरा ख्याल है कि अगर आनन्द कुमार सिन्हा अपना थोड़ा सा वक्त भी लिखने के लिए निकाल पाते तो उनके भीतर का कथाकार- उपन्यासकार नए सिरे से कहाँनियों की रचना के साथ-साथ एक मौलिक और यथार्थवादी उपन्यास लिखने का काम भी कर पाता। मैं आज भी सोचता हूँ कि काश! आनंद कुमार सिन्हा ने अपने को एक कथाकार- उपन्यासकार के रूप में विकसित करना चाहा होता तो कितना अच्छा होता।

संपर्क : मो. : 7250201038

मुक्तांचल अक्टूबर-दिसंबर 2021

8

वे आनंद के प्रतिरूप थे

डॉ. पंकज साहा

महाकवि तुलसीदास जी की एक सुप्रसिद्ध उक्ति है -

“आवत हिय हरषै नहिं, नैनन नहिं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसै मेह।”

तुलसीदास जी से क्षमा-याचना कर उपर्युक्त पंक्तियों में थोड़ा हेर-फेर कर मैं कहना चाहता हूँ -

“आवत हिय हरषै, नैनन बरसै नेह।

‘पंकज’ तहाँ बार-बार जाइए, ‘आनंद’ हो जिस गेह।”

उपर्युक्त पंक्तियों में साहित्य-प्रेमी, साहित्यकार एवं ‘मुक्तांचल’ के प्रकाशक स्व. आनंद कुमार सिन्हा के लिए कह रहा हूँ।

वकीलों के संदर्भ में आम धारणा बहुत अच्छी नहीं है, परंतु पेशे से वकील आनंद जी से जब मैं पहली बार मिला, तब वे मुझे कहीं से भी वकील नहीं लगे। अलबत्ता उनके कार्यालय के कमरे में आलमारियों में सर्जों कानून की मोटी-मोटी पुस्तकें उनके वकील होने का प्रमाणपत्र दे रही थीं।

उनका दूसरा पक्ष उनके ऊपर स्थित निजी बैठक में दिखा, जहाँ हिंदी-साहित्य की पुस्तकें, पत्रिकाएँ, शब्दकोश, ब्रिटैनिका इनसाइक्लोपीडिया के सारे खंड इत्यादि उन्हें साहित्य-प्रेमी साबित करने के लिए काफी थीं।

मुझसे उनका कोई पुराना संबंध नहीं था, लेकिन मुझसे वे इतने आत्मीय होकर मिलते थे मानों बहुत दिनों से जानते हों।

वैसे तो उनकी हिंदी-साहित्य की तमाम विधाओं में रुचि थी, परंतु व्यंग्य को वे बड़े चाव से पढ़ते थे। मेरा व्यंग्य उन्हें बहुत पसंद आता था। मेरी व्यंग्य पुस्तक ‘हा! वसंत’ को वे बड़े रुचि के साथ पढ़ते थे। इसी प्रकार ‘सन्मार्ग’ में मेरी कोई व्यंग्य-रचना छपती थी, तो उसे भी अत्यंत आग्रह के साथ पढ़ते एवं आनंदित होते थे।

वे आनंद के प्रतिरूप थे। खुद आनंदित होते और अपने संपर्क में आए व्यक्तियों को भी आनंदित करते। निकट, दूर, सुदूर के किसी भी व्यक्ति को आनंद प्रदान करने एवं उनकी आवभगत करने में कोई कंजूसी नहीं बरतते थे।

ऐसी महान आत्मा के प्रति अश्रुपुरित विनम्र श्रद्धांजलि।

संपर्क : पंकज साहा - एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज,
खड़गपुर-721305, (पं. बंगाल), मो. 9434894190

यादों में बसे रहेंगे गीतेश शर्मा और उनके गुलजार रहने वाले साहित्यिक अड्डे रावेल पुष्प

मेरी बचपन से ही पत्र पत्रिकाएं पढ़ने की आदत को पंख लगने शुरू हो गए थे और फिर कलम ने भी कुछ-कुछ लिखने की तरफ अपने कदम बढ़ा दिए थे। मैंने अपना महाविद्यालय का समय रानीगंज में बिताया तथा फिर पटना विश्वविद्यालय से गणित में स्नातकोत्तर करने के बाद भी रानीगंज में ही रहा, क्योंकि मेरी नौकरी भी वहीं एक बीमा कंपनी में लग गई।

रानीगंज का तिलक पुस्तकालय, जो काफी उन्नत था और वहाँ पुस्तकों के साथ ही देश की अधिकतर पत्र-पत्रिकाएँ भी पाठकों के लिए उपलब्ध थीं। मैं लगभग हर शाम पुस्तकालय के वाचनालय जाता और पत्रिकाएँ उलट-पुलट कर देखता, इसी क्रम में मेरी नजर एक साप्ताहिक अखबार पर पड़ी जिसमें महत्वपूर्ण आलेखों के साथ ही एक पृष्ठ साहित्यिक रचनाओं पर भी था। नए स्वर के उस अखबार का नाम था 'जन संसार' और संपादक के रूप में थे, 'गीतेश शर्मा!'

मैंने उस अखबार को पढ़कर कई बार पत्र भी लिखे और फिर नए स्वर के अंतर्गत अपनी कविताएँ भी भेजीं। मेरी कविताएँ वहाँ भी छप रही थीं और मेरा एक संबंध स्वाभाविक रूप से अखबार के साथ बनने लगा था। अब तो मेरे घर पर भी नियमित रूप से जन संसार डाक द्वारा आने लगा था। गीतेश शर्मा जी से मेरी इच्छा मिलने की हो रही थी। मेरा कलकत्ता जाना किसी न किसी बहाने होता ही था, तो मैं एक शाम धर्मतल्ला 'जन संसार' के कार्यालय पहुँचा तो वहीं गीतेश शर्मा जी से मुलाकात हुई और फिर भाई प्रेम कपूर तथा कुसुम जैन से भी। इसी तरह मिलने-जुलने का सिलसिला चलता रहा और उनके यहाँ होने वाले कार्यक्रमों में कभी-कभी शिरकत भी करने लगा था, लेकिन शुरुआती समय में सब मुझे रावेल शॉ पुष्प बुलाते थे और कहीं भी मेरा नाम किसी कार्यक्रम के लिए भेजते तो वहाँ मेरा नाम इसी रूप में होता। दरअसल उनके जेहन में हिंदी के कथाकार राबिन शॉ पुष्प थे। खैर, बाद में मैंने इसे स्पष्ट किया कि राबिन और रावेल दो अलग-अलग जीव हैं।

साल 1990 का समय था और पंजाब की घटनाओं पर आधारित गीतेश जी की पुस्तक आई थी 'पंजाब: सुलगता सवाल'। मैं, क्योंकि उन दिनों रानीगंज पंजाबी मोड़ में बीमा कंपनी के शाखा प्रबंधक के रूप में था और उस दौर में पत्रकारों की एक संस्था समाचार जगत की स्थापना से भी जुड़ा था। मैंने गीतेश जी को फोन किया कि मैं इस किताब पर चर्चा करवाना चाहता हूँ और आपका स्वागत भी, क्योंकि इस इलाके में पंजाब से जुड़े अधिकतर वाशिंदे हैं जिससे बहुत सी स्थितियाँ स्पष्ट हो सकेंगी। उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और एक कार्यक्रम समाचार जगत के बैनर तले हुआ, जिसमें कई लोग शामिल हुए। वहाँ गीतेश शर्मा जी ने बताया कि वे पंजाब समस्या को आजाद भारत की ही नहीं भारत के इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी मानते हैं। एक तरफ धर्म और पंथ की रक्षा के नाम पर तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता और अखंडता के नाम पर एक ही माँ की कोख से पैदा हुए दो सहोदर भाइयों हिंदू और सिक्खों के बीच ऐसी खाई पैदा कर दी गई कि दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे हो उठे थे।

उन्होंने पुस्तक लिखने के बारे में बताया कि पंजाब की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक

पृष्ठभूमि के साथ पंजाब के आज जो हालात हैं उनका तथ्यात्मक एवं वस्तुगत विश्लेषण इसमें किया है। उन्होंने साफ तौर पर कहा कि पंजाब समस्या का हल न तो खालिस्तान में है और ना ही चंडीगढ़ या नदी जल के बँटवारे में। इसका हल तो लोगों के टूटे दिलों में है। लोगों के दिलों को तोड़कर नहीं जोड़कर ही समस्या का हल हो सकता है।

उनकी यह बात भी काबिले-गौर रही कि आज धर्म की दुहाई देने वाले धर्म के ठेकेदार जब धर्म खतरे में है का नारा बुलंद करते हैं उनका एकमात्र मकसद नेतागिरी करना होता है। वे धर्म के पाखंड और कर्मकांड के पोषक होते हैं, और उनका आचरण धर्म के मूलभूत आदर्शों के सर्वथा विपरीत होता है। वे उन कारनामों को करते हैं या करने वालों को संरक्षण देते हैं जो उनके अपने हितों के विपरीत तो नहीं होता, लेकिन देश समाज और मानवता के हितों के विपरीत अवश्य होता है। इन्हीं तत्वों के कारण धर्म एक मखौल बन कर रह गया है। धर्म का जीवन के आचरण से कोई संबंध ही नहीं रहा।

गीतेश जी के साथ अंतरंगता तो तब और शुरू हुई जब मैं अपनी नौकरी के सिलसिले में तबादला लेकर कोलकाता आए और फिर अवकाश ग्रहण कर यहीं का होकर रह गया। यहाँ के साहित्यिक, सांस्कृतिक माहौल और विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से जुड़ाव मुझे इस देश की सांस्कृतिक राजधानी कोलकाता ने फिर कहीं और जाने ही नहीं दिया। यहाँ आने के बाद तो फिर नियमित 'जन संसार' द्वारा लगने वाले साहित्यिक अड्डों में शिरकत करने के मौके मिलते रहे। उनकी इस काबिलियत पर कोई संशय नहीं रहा कि उनके यहाँ लगने वाले अड्डों में कौन सा साहित्यकार पत्रकार या फिर अन्य भाषाओं के, विचारधाराओं के लोग न आते हों

और अपने विचार खुलकर प्रकट न करते रहे हों। उनके यहाँ लगने वाले अड्डों में खुशवंत सिंह, अमृता प्रीतम, इमरोज, विष्णु प्रभाकर, नामवर सिंह, अमृत राय, प्रेमेन्द्र मित्र, प्रकाशवती पाल, साहिर लुधियानवी, प्रभाकर श्रोत्रिय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अरुण कमल, प्रभा खेतान, केदारनाथ सिंह, अब्दुल बिसमिल्लाह, डॉ. रणजीत, सुनील गंगोपाध्याय, मृणाल सेन, ममता शंकर, मिथुन चक्रवर्ती, गौतम घोष, हू थिन्ह, हाम आन थुई सरीखे न जाने कितने व्यक्तित्व आए हैं और उसके साथ ही नए लिखने पढ़ने वालों को भी वे जोड़ते रहे। उनके संपर्कों की दुनिया बड़ी विशाल रही।

जन कवि बाबा नागार्जुन तो अपने कोलकाता प्रवास में महीनों जनसंसार कार्यालय में ही रहते और यहाँ रह कर ही उन्होंने कई कविताएँ लिखवाई। वे बोलते जाते और कभी गीतेश जी, कभी प्रेम कपूर और कभी कुसुम जैन लिखती जाती।

वे इंडो-वियतनाम सॉलिडेरिटी कमेटी के पुरोधा भी रहे और कई बार वियतनाम की यात्राएँ कर चुके थे। इसके अलावा वियतनाम का जब भी कोई प्रतिनिधि मंडल भारत आता तो उसका स्वागत एवं कार्यक्रम 'जनसंसार' में अवश्य होता और हम सबको उसमें शरीक होने का मौका मिलता। कोलकाता पुस्तक मेले में वियतनाम मंडप हमेशा उनकी देखरेख में ही लगता।

गीतेश जी बड़े बेबाक किस्म के इंसान थे और धार्मिक आडंबरों के बिलकुल खिलाफ थे। वे अपने आप को घोर नास्तिक भी मानते थे और कहते थे कि धर्म के नाम पर लोगों में विभेद पैदा किया जाता है। हम अपने सामने धर्म का वीभत्स और बर्बर रूप ही तो देख रहे हैं। पूरे भारतीय उपमहाद्वीप और अफगानिस्तान में धर्म के रक्त रंजित इतिहास को दोहराया जा रहा है। हम सब

देख रहे हैं कि अगर कहीं कोई ईश्वर है तो वह इतना असहाय क्यों है, कि इन सब को रोक ही नहीं पा रहा।

किसी भी धर्म पर या धार्मिक संगठनों तथा राजनीतिक दलों या कभी कुछ साहित्यकारों पर भी वे तल्ख टिप्पणियाँ करने से नहीं चूकते। जिसके कारण वे कभी भी अजातशत्रु नहीं रहे। उनकी एक और संस्था रही - डायलॉग सोसाइटी, जिस के बैनर तले भी कई अड्डे लगते रहे और कई बार मैंने भी उनका संयोजन किया। मेरा जनसंसार जाना अगर कुछ दिनों तक नहीं होता तो वे फोन करते - क्या बात है रावेल, मेरे से नाराज हो क्या? आओ एक दिन समय निकालकर एक साथ चाय पीएंगे, बातचीत करेंगे और फिर मैं समय निकालकर पहुँच जाता। इसी तरह एक शाम मैं धर्मतल्ला 'वैचारिकी' पत्रिका के कार्यालय में बैठा हुआ था। उन दिनों मैं उसके संपादन से जुड़ा हुआ था। उनका फोन आए रावेल कहाँ हो? मैं दिल्ली से वापस आ गया हूँ एक हफ्ते से उपर हो गया और तुम अभी तक मिलने भी नहीं आए। मैंने कहाँ ठीक है मैं आता हूँ।

कितनी देर में आओगे? जल्दी आओ, क्योंकि यहाँ तुम्हारी मुलाकात कुछ और भी मित्रों से हो जाएगी।

मैंने कहाँ आप फोन रखें और मैं बस पहुँचा ही समझें। मैं दस मिनटों में जनसंसार कार्यालय पहुँच गया। वहाँ गीतेश शर्मा जी के अलावा श्रीनिवास शर्मा और भाई जितेंद्र धीर थे। हम चारों काफी देर तक बातें करते रहे और फिर विदा हुए, लेकिन यह नहीं पता था कि गीतेश जी से यह मेरी आखिरी मुलाकात होगी और श्रीनिवास शर्मा जी से भी। दोनों शर्माओं से मेरी मुलाकात वही आखिरी रही। ये मुलाकात गीतेश जी से उनकी मृत्यु से हफ्ता-भर पहले की रही होगी। देश-दुनिया में फैले निष्ठुर कोरोना ने

कितनों को अपना ग्रास बना लिया था और गीतेश जी को भी अपने सूक्ष्म किंतु भयानक जबड़े में दबा लिया था।

गीतेश जी ने ही मुझे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जोड़ा और फिर दो-दो राष्ट्रीय अधिवेशनों में जाने का मौका भी मिला। इसके कारण देश के कई खास तौर से वामपंथी विचारधारा के लेखकों से मिलने के मौके मिले। आखिरी बार जयपुर में हुए अधिवेशन के बाद उनके साथ कार द्वारा सड़क माग के रास्ते दिल्ली आ रहा थे और हमारे साथ मैं थे- भाई विमल शर्मा, जीतेंद्र धीर, जीतेंद्र सिंह, प्रभामई सामंतराय। सारे रास्ते अधिवेशन तथा और भी विषयों पर बातचीत चलती रही। हम रास्ते में एक ढाबे पर रुके थे कुछ चाय-नाश्ता करने। ढाबे में जगह-जगह खाटें बिछी हुई थीं और हम लोग भी खाट पर बैठ गए। मुझे न जाने क्या सूझी तो मैंने जरा मजाकिया लहजे में गीतेश जी से कहाँ-मैंने नया मोबाइल लिया हुआ है, इसमें तस्वीरें बड़ी अच्छी आती हैं। आज मैं आपका फोटो-सेशन करता हूँ और कुछ तस्वीरें उतारता हूँ ताकि वे तस्वीरें वक्त जरूरत काम आ सकें।

मैं अभी जाने वाला नहीं हूँ रावेल, निश्चित रहो- उन्होंने छुटते ही कहाँ।

वो तो ठीक है, खुशवंत सिंह तो शतक पूरा नहीं कर सके, पर आप जरूर करें, लेकिन तस्वीर तो फिर भी काम आएगी ही।

मैंने उनकी कुछ तस्वीरें उतारी और ये अजीब संयोग या दुर्योग रहा कि उनकी मृत्यु (02/5/2021) का समाचार जब अचानक मिला, तो मैंने वही ली गई एक तस्वीर के साथ फेसबुक पर दुखद समाचार पोस्ट किया। वो तस्वीर ही वायरल हो गई और कई अखबारों ने भी इसका उपयोग किया। सच कभी-कभी हँसी मजाक में कही हुई बात भी कितनी सच्ची हो

जाती है।

उनकी मृत्यु के बाद वियतनाम के राष्ट्रपति न्यूग्येन शुआन फुक ने गीतेश शर्मा जी को गत पचास वर्षों से निरंतर दोनों देशों के बीच मैत्री संबंधों के विकास एवं विस्तार के लिए उनके अद्वितीय और अविस्मरणीय अवदान के लिए वियतनाम के सर्वोच्च 'वियतनाम फ्रेंडशिप आर्डर मेडल' से सम्मानित किया।

गीतेश जी विभिन्न देशों की सरकारों एवं संगठनों के आमंत्रण पर कई बार विदेश यात्राएँ कर चुके थे, जिनमें सोवियत संघ, अमेरिका, कनाडा, बुल्गेरिया, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, थाइलैंड, उत्तर कोरिया, जार्डन सहित और भी कई देश शामिल हैं।

गीतेश जी की विभिन्न विषयों पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें साम्प्रदायिकता

एवं साम्प्रदायिक दंगे, धर्म के नाम पर, बाबा नागार्जुन और कलकत्ता, भारतीय संस्कृति और सेक्स, हो ची मिन्ह और भारत, भगतसिंह का रास्ता, टैगोर : एक दूसरा पक्ष, राहुल : मंथन एवं चिंतन (संपादित) वगैरह।

उनकी मृत्यु के पश्चात अभी हाल में ही राजकमल प्रकाशन द्वारा उनके संपादन में भारत और वियतनाम के रचनाकारों की रचनाओं का एक संग्रह साहित्य संगम भी आए है।

गीतेश जी ता-उम्र साहित्य साधना में तथा इसी तरह की गतिविधियों में हमेशा सक्रिय रहे।

जो भी हो गीतेश शर्मा जी की स्मृति खासतौर से कोलकाता के साहित्यकारों में हमेशा बनी रहेगी और 'जनसंसार' में हरदम गुलजार रहने वाले उनके साहित्यिक अड्डे भी यादों में बसे रहेंगे।

संपर्क : नेताजी टॉवर,, 278/ए,एन एस सी बोस रोड, कोलकाता-700047, मो. 9434198898, ईमेल: rawelpushp@gmail.com

अजहर की रौशनी दिखाएगी राह प्रताप सहगल

आप एक पेड़ की कल्पना कीजिए
उस पेड़ पर स्वयं नटराज ने
रंग, ताल, भाव और रस के पत्ते उगा दिए हों
अलग-अलग रंगों के पत्ते
प्यार और मनुहार की फुहारें सींचती हों वे पत्ते
बहुत लोगों को छाया देता हो वह पेड़
कुछ कोयलें, कुछ गिलहरियाँ
मधुर तानें और रंग-भरी चंचलता का कब्जा हो जिस पेड़ पर
जिस पेड़ की जड़ों में मनुष्यता हो
और हो अनुशासन-बद्ध एक प्यार भरा तना
विनम्रता और कठोरता का एक अदभुत संगम हो जिस पेड़ में
उस पेड़ का नाम अजहर आलम है।

अजहर आलम के बारे में बहुत बार सोचता हूँ। अब तो एक अरसा बीत गया है उस पेड़ को देखे हुए। भले ही जिस्मानी तौर पर अनुपस्थित हो गया है लेकिन मन में अब भी कहीं जमा हुआ है वह पेड़। अजहर आलम मेरे लिए मात्र एक संज्ञा नहीं, एक विशेषण भी नहीं बल्कि मनुष्यता का व्याकरण है। एक अच्छा रंगकर्मी होना, एक अच्छा साहित्यकार होना या एक अच्छा वैज्ञानिक होना बहुत लोगों के नसीब में होता है, लेकिन इस सबके साथ एक अच्छा मनुष्य होना सबके नसीब में नहीं होता।

मुझे हैरानी होती है कई बार, जब मैं अजहर आलम के बारे में सोचता हूँ। बहुत लंबा संबंध नहीं था मेरा अजहर से। लेकिन संबंध लंबा हो और हमेशा औपचारिक ही रहे तो उससे अच्छा है वह संबंध जिसकी अवधि भले ही छोटी हो, लेकिन उसमें औपचारिकता की सीमाएँ टूटी हों। ऊष्मा रहित लंबे संबंध से बेहतर है, ऊष्मा से भरा वह संबंध, जिसकी उम्र छोटी हो। मेरा और अजहर का संबंध अभी भी अपरिभाषित है, लेकिन वह ऐसा क्या है जो मुझे बार-बार उसके करीब ले जाता है। उसकी अनुपस्थिति में भी मैं उसकी उपस्थिति महसूस करता हूँ।

अजहर से मेरी मुलाकात सीधे नहीं हुई। पहले उसका नाम आए मेरे सामने। उसके रंगकर्म से थोड़ा-बहुत वाकिफ़ था, लिटिल थेस्पियन की रंगमयी उपस्थिति से भी थोड़ा-बहुत परिचित था, लेकिन इस व्यक्तित्व की गहराई और ऊँचाई के आए मेरे सामने तब खुलने लगे, जब हम लोग सीधे संपर्क में आए।

अजहर से पहले मेरी मुलाकात उमा से हुई। उमा यानी उमा झुनझुनवाला। जब वह मिली, वो हमारे लिए उमा झुनझुनवाला ही थी, लेकिन पहली ही मुलाकात के बाद वह मेरे और शशि के लिए सिर्फ़ उमा हो गई। शशि को तो उसने पहले ही दिन से अम्मा कहना शुरू कर दिया, लेकिन मैं शुरू दिन से उसके लिए सर था और आज भी सर ही हूँ। कहा न, कुछ संबंधों को नाम देना बहुत

कठिन होता है। उमा से हमारी पहली मुलाकात गुवाहाटी में हुई थी। यह एक आकस्मिक मुलाकात थी। फिल्म की किसी कहानी की तरह। लिफ्ट में मुलाकात और फिर उमा होटल के हमारे कमरे में ही चली आई। वह एक ऐसी शाम थी, जहाँ हमें पता चला कि उमा न केवल एक रंगकर्मी बल्कि एक अच्छी कवि भी हैं। कहानीकार भी है। उसी से हमें पता चला कि वह और अजहर पति-पत्नी हैं और मिलकर लिटिल थेस्पियन चला रहे हैं। अब तो तीन दशक होने वाले हैं, लेकिन अफसोस कि इस यात्रा में लिटिल थेस्पियन का एक मजबूत स्तंभ समय से पहले ही गिर गया। हा! कोविड।

नोवोटेल होटल के इसी कमरे में शशि पहली ही मुलाकात में उमा के लिए अम्मा हो गई और उमा झुनझुनवाला हमारे लिए सिर्फ उमा। उमा के माध्यम से ही हमारा संपर्क अजहर से हुआ। उमा की एक किताब आई थी 'एक औरत की डायरी'। तमाम डायरियों से अलग है यह डायरी। इस डायरी की भूमिका लिखने का अवसर मुझे मिला। मैं स्वयं को प्रिविलेज्ड मानता हूँ कि प्रकाशन से पहले ही इस ऑफ-बीट डायरी को मैंने पढ़ा। इसी डायरी का लोकार्पण समारोह था कोलकाता में। उमा ने हमें आमंत्रित किया तो न करने का कोई कारण ही नहीं था हमारे पास।

हम लोग कोलकाता हवाई अड्डे पर उतरे ही थे कि मेरा मोबाइल बजने लगा- 'सर मैं अजहर बोल रहा हूँ' बहुत ही नरम और स्नेह-सिक्त आवाज मुझे सुनाई दी। 'कहाँ हैं आप?' मैंने पूछा। उन्होंने गेट नंबर बताया। हम उसी गेट से बाहर निकले। इससे पहले हम लोग कभी मिले ही नहीं थे तो एक-दूसरे को पहचानने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इस बार मैंने फोन मिलाया। मुझे दूर से ही एक नौजवान अपना फोन उठाता दिखाई दिया। मैंने हाथ हिलाया, उसने भी हाथ

हिलाया। हम लोग जोश भरे अंदाज से मिले। एक सुंदर सा नौजवान मेरे सामने था। उसने हमारे हाथ से सामान की ट्राली पकड़ ली और एक जगह ले जाकर खड़ा करके कहाँ- 'आप यहीं रुकिए, मैं गाड़ी लेकर आता हूँ'।

गाड़ी कोलकाता की सड़कों पर तेज दौड़ रही थी। दिल्ली के मुकाबले ट्रैफिक बहुत कम था। मैंने ही बात शुरू की- 'यहाँ तो साँस आ रही है, दिल्ली में तो ट्रैफिक का बुरा हाल है।'

"हाँ, आने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई।" अजहर हाँ या हूँ बहुत धीरे बोलता था। मुझे लगा कि वह बात करने में थोड़ा झिझक रहा है। तब हमने उमा की बातें, ममता बनर्जी और राजनीति की बातें, कुछ रंगकर्म की बातें शुरू कीं। अजहर अभी भी कम बोल रहा था। मुझे लगा कि वह ड्राइव कर रहा है, इसलिए कम बोल रहा है, लेकिन कोलकाता में दो दिन रहने के बाद पता चला कि वह कम ही बोलता है। उसके मुकाबले उमा कहीं ज्यादा बोलती हैं। यानी पहली मुलाकात में जिस तरह से उमा के और हमारे बीच औपचारिकता कुछ ही क्षणों में ढह गई थी, ठीक उसके विपरीत होटल पहुँचने तक के लगभग डेढ़ घंटे के सफर में भी हमारी औपचारिकता बनी रही। मन ही मन सोच रहा था कि इस आदमी के संकोच के तोड़ने के लिए आज शाम को ही बैठना पड़ेगा। और वही हुआ। पुस्तक पर तो कार्यक्रम अगले दिन था। शाम को अजहर और उमा दोनों होटल के कमरे में आ गए।

मैंने अजहर से पूछा- "ले लेतो हो न" उसकी आँखों और होठों पर मुस्कराहट एक साथ तैर गई तो उसने 'हाँ' ऐसे की कि हाँ लेता तो नहीं, लेकिन ले भी ले लेता हूँ। वह लगातार उमा की ओर देख रहा था। संभवतः वह उमा की स्वीकृति चाहता था। उमा ने भी पहले हाई ब्लड प्रेशर का बहाना बनाकर बात टालने की

कोशिश की, लेकिन मैं जानता था कि अजहर के मन में दो-एक पैग लगाते हुए बातें करने का मन है। खैर, हम चारों ने अपने-अपने गिलासों में थोड़ी-थोड़ी डाली और फिर गुवाहाटी का सूत्र पकड़ते हुए बातों का सिलसिला जो शुरू हुआ तो देर तक चला। कविताएँ भी सुनी-सुनाई। कोलकाता और दिल्ली के रंग-जगत पर भी बहुत बातें हुईं। कुछ नाटकों और कविताओं के बारे में भी।

यूँ मैं और शशि कोलकाता पहले भी आ चुके थे, लेकिन अलग-अलग। मैं तो दो बार आ चुका था। यह पहला अवसर था, जब हम दोनों साथ थे। इसलिए कार्यक्रम दो दिन की बजाए पाँच दिन का बना लिया था। अगली सुबह हम लोग मंदारमणि के लिए रवाना हो गए। अजहर और उमा ने हमारे सफर की आरामदायक व्यवस्था करवा दी थी। मंदारमणि के रिजार्ट में रुके और अगले दिन दीघा भी घूम-घामकर कोलकाता लौट आए, तो अजहर ने लिटिल थेस्पियन के कलाकारों के साथ मेरे नाटक 'अन्वेषक' के पाठ की व्यवस्था कर रखी थी। मैं बेहद थका हुआ था, लेकिन अपने नाटक का पाठ करने का लोभ भला कौन नाटककार छोड़ सकता है। पाठ मैंने स्वयं किया। लगभग डेढ़ घंटा। थके हुए तन में न जाने ऊर्जा कहाँ से आ गई थी। पाठ के बाद पूरे कमरे में स्तब्धता थी। लिटिल थेस्पियन के कलाकारों के साथ कोलकाता के कुछ अन्य रंगकर्मी भी मौजूद थे। अजहर की राय में केवल नाटक का अच्छा होना ही काफी नहीं, बल्कि उसका मंचन या पाठ भी अच्छा होना चाहिए। उन्होंने मुझसे कहाँ था - "प्रताप साहब, आपने जिस अंदाज में पाठ किया है, लगता है हम नाटक देख रहे हैं।" यह मेरे लिए बहुत उत्साहवर्द्धक बात थी। दरअसल, अजहर स्वयं अन्वेषक का मंचन करना चाहता था। उसने इस

नाटक की चर्चा भी बहुत सुनी थी। उसका मानना था कि क्योंकि उसने इस नाटक का कोई भी मंचन नहीं देखा, इसलिए वह इसे बिलकुल अलग तरह से करेगा। वह बोलता जितना कम था, उसकी आँखें उतना ही ज्यादा बोलती थीं। शाम को हम लोग फिर होटल के कमरे में बैठे। अगली सुबह हमारी लौटवाँ फ्लाईट थी। रात को मेरी तबीयत कुछ खराब हो गई। सोचा कि जाना मुल्तवी कर देते हैं। सुबह-सुबह उमा और अजहर दोनों आ गए, क्योंकि उन्हें हमें एयरपोर्ट छोड़ने जाना था। जब उन्हें मेरी तबीयत का पता चला तो दोनों ने ही प्यार भरी झिड़की दी कि हमने रात को ही उन्हें फोन क्यों नहीं किया। सचमुच मेरी हालत 'टू बी आर नाट टू बी' वाली हो रही थी। अजहर ने पहले डॉक्टर के पास ले जाना चाहा। सोचने लगा कि इतनी सुबह कौन सा डॉक्टर उपलब्ध होगा। मैं, टू बी आर नाट टू बी के झूले में झूल रहा था। अजहर के चेहरे पर तैरती परेशानी भी देख रहा था। मैंने अंततः टू बी के पक्ष में फैसला किया और अपनी समझ से दवा लेकर चल निकला।

एयरपोर्ट पहुँचकर व्हील-चेयर की व्यवस्था के लिए इधर उमा, उधर अजहर और तीसरी ओर शशि भाग रहे थे। व्यवस्था हुई और हम दोनों ने उन दोनों से विदा ली। उन दोनों के चेहरों पर परेशानी के बादल अभी भी तैर रहे थे। वो सफर कैसा कटा। इसकी भी एक कहानी, लेकिन वह कहानी यहाँ नहीं, कहीं और। दूसरी बार एक दिन उमा का फोन आए कि अजहर दिल्ली में है और वह श्रीराम सेंटर की रिपर्टरी के साथ नाटक 'मीर जाफ़र' के निर्देशन में जुटा हुआ है। मुझे गुस्सा भी आए और नाराज़गी भी हुई कि दिल्ली में होने के बावजूद अजहर मुझसे मिलने नहीं आए। मैंने उसे खूब डाँटने के लिए फोन किया। लेकिन, फोन पर भी उसका मुस्कुराता

हुआ चेहरा मेरे सामने आ गया और मैंने उसे प्यार से झिड़क दिया। जब उमा को इस बात का पता चला तो उसकी प्रतिक्रिया थी-“अच्छ किया मैंने उसे कहकर भेजा था कि सर और अम्मा से बात कर लेना, उनसे मिलकर आना।” अजहर का यह संकोच ही उसके प्रति मन में स्नेह जगा देता था। अभी भी लिखते हुए उसका मुस्कुराता हुआ चेहरा मेरे सामने घूम रहा है। पूछ रहा है कि क्या लिख पाओगे कि मेरे मन में क्या-क्या था। क्या-क्या करना था मुझे। जानता हूँ कि अजहर की प्रतिभा के विभिन्न आएमों की संभावनाएँ अभी भी पूरी तरह से खुली नहीं थीं। वह बीच राह में ही कहीं गायब हो गया। अजहर प्यारे, ऐसे भी कोई गायब होता है क्या?

इस बार दिल्ली में अजहर अकेला था। सुबह से शाम तक रिहर्सल में मसरूफ़। उसी से पता चला कि आजकल रिपर्टरी के मुखिया के रूप में अयाज ख़ान की नियुक्ति हुई है। यह जानकर बहुत अच्छा लगा और अयाज पर थोड़ा रंज हुआ कि उसने भी बताया नहीं। अगली शाम अजहर हमारे घर आए। इधर वह मीर जाफ़र की तैयारी में जुटा था लेकिन उन दिनों वह रूहें नाटक की तैयारी भी कर रहा था। अपने बारे में थोड़ा और खुला। आज उमा भी नहीं थी टोकने के लिए और उसने अपने मन से जी भरकर हमारे साथ रसरंजन किया। हमने या तो थियेटर और नाटकों की बातें कीं या फिर घर-परिवार की।

कोविड के बढ़ने की खबरें आने लगी थीं और अन्य सभी गतिविधियों के साथ-साथ थियेटर की गतिविधियों पर भी कोविड के बादल मँडराने लगे थे। एक अनिश्चितता का माहौल बना हुआ था। मेरे मन में उत्साह सा था कि मुझे पहली बार अजहर द्वारा एक निर्देशित नाटक देखने का अवसर मिलेगा। कोविड का दुष्प्रक्र बहुत तेजी

से घूम रहा था। अंततः मीर जाफ़र की पहली प्रस्तुति को भी ग्रहण लग गया। ऐसा ग्रहण, जो आज तक भी लगा हुआ है। यह हाल तो सभी का हो रहा है। अजहर कोई अपवाद नहीं था, लेकिन अजहर के निर्देशकीय कौशल को देखने का मौका मेरे हाथ से जाता रहा। इस बीच उमा भी दिल्ली आ गई थी। उन्हें कोलकाता लौटना था। उमा और अजहर इस बार दोनों साथ ही थे, हमारे घर आए। खूब चर्चाएँ, ढेर सारी बातें, कुछ कविताएँ। उमा और अजहर ने कुछ सुनाने को कहाँ तो जाने कैसे मेरे मन में आए कि एक पुराना गीत सुनाता हूँ। हम लोग छत पर आ गए। रात स्याह थी। मौसम सुहावना था। मैंने अपने एक पुराने गीत का मुखड़ा सुनाया “दुनिया ने ठुकराया मुझको, नहीं बताया किसी से मैंने। मगर तुम्हारी इक ठोकर ने मेरे अधरों को खोला है” अजहर रिकार्ड कर रहा था। अंतरा भी सुनाया और फिर गप्पें लगाने लगे थे। काश! फिर कभी आ सकती ऐसी ही कोई शाम। अब नहीं होगा ऐसा कभी नहीं।

अगली बार अजहर से हमारी मुलाकात फिर दिल्ली में ही हुई। इस बार उसे अपने नए नाटक ‘रूहें’ के लिए नेमिचंद्र जैन सम्मान मिला था। उससे एक शाम पहले अजहर हमारे साथ हमारे घर पर ही था। उसने अपना नया नाटक ‘चाक’ सुनाया। एकदम नया विषय। मुझे नाटक बहुत अच्छा लगा, लेकिन वह अभी उसपर और काम करना चाहता था। वह जानता था कि मंचन की तैयारी करते हुए उसमें कुछ तब्दीलियाँ जरूर होंगी। इस नाटक पर मैंने अलग से कुछ लिखा भी है जो इस नाटक की भूमिका के रूप में प्रकाशित है। अगली शाम उसे सम्मान मिला। रूहें नाटक का अभिनयात्मक मंचन भी हुआ। नाटक ने प्रभावित किया, लेकिन अजहर का कहना था कि आप हमारा मंचन देखिएगा। वह

भी मैं नहीं देख सका।

मार्च, 2020 में उमा ने पश्चिम बंग हिंदी अकादमी की ओर से एक बड़ा आयेजन किया। यह एक जोखिम भरा काम था। कोविड की दूसरी लहर बढ़ने लगी थी। कोलकाता में ही हम लोग गए। दो दिन का सेमिनार। बहुत कामयाब सेमिनार था। उमा सारी चिंताओं को अपने में समेटे काम किए जा रही थी। अजहर का सहयोग पार्श्व से था। तीन दिन का नाट्य-समारोह। इसी में मेरे नाटक 'अन्वेषक' की प्रस्तुति भी हुई। श्रीराम सेंटर रिपोर्टरी ने अयाज ख़ान के निर्देशन में यह प्रस्तुति की थी। मैं भी पहली बार यह प्रस्तुति देख रहा था। अयाज ने ही इससे पहले ग्वालियर में इसी नाटक का मंचन किया था। मुझे लग रहा था कि वह मंचन इस मंचन से बेहतर था। अजहर खामोश था। वह अन्वेषक का आलेख मेरे मुख से ही सुन चुका था। कुछ दृश्यों के बारे में वह अपनी राय भी दे रहा था। लेकिन उस नाटक की अगली कोई प्रस्तुति तो उसके बाद अभी तक नहीं हो सकी। दिल्ली छोड़ने से पहले मैंने अपने नए नाटक 'बुल्लेशाह' का आलेख अजहर और उमा के लिए मेल कर दिया था। अजहर वह नाटक पढ़ भी चुका था। उसने जब मुझसे मंचन के बारे में पूछा तो मैंने बताया कि दिल्ली में रवि तनेजा, सतीश आनंद तथा अन्य कुछ निर्देशक भी इसका मंचन करना चाहते हैं। वह छूटते ही अधिकार और गर्व से बोला था "कोलकाता में तो मैं ही करूँगा, आप देखिएगा हमारी प्रोडक्शन।" बताओ अजहर अब कहाँ देखूँ तुम्हारी वह प्रोडक्शन। मैं जान रहा था कि उसके ज़हन में 'बुल्लेशाह' कल्पित हो चुका है। बस समय की बात है।

उस समय पश्चिम बंगाल विधानसभा के चुनाव होने वाले थे। ख़ूब गहमागहमी थी। रैलियों में कोविड नियमों एवं बंधनों की ख़ूब धज्जियाँ उड़ाई जा रही थीं। उसकी चर्चा फिर कभी। हम

लोग सकुशल लौट आए। उसके बाद मार्च में ही लिटिल थेस्पियन का भी एक थियेटर समारोह हुआ। शायद यही कारण बना या कुछ और, कहना मुश्किल है। पता चला उमा और अजहर दोनों कोविड के शिकार हो गए। उनके बच्चे आदिल और गुंजन भी इस महामारी की चपेट में आ गए थे। दिल्ली से ही बात होती थी। हम भी इधर यही सब भुगत रहे थे। हमारा संवाद होता रहा। बच्चे जल्दी ही इस बीमारी से बाहर आ गए। उमा और अजहर दोनों की तबीयत दिनोंदिन बिगड़ रही थी। यह ऐसा समय था जब कोई किसी के लिए सिवाय फोन पर हालचाल पूछने के और कुछ भी नहीं कर सकता था। उमा ने हिम्मत की, वह बच निकली। अजहर अभी भी अस्पताल में था। फोन पर लगातार बात होती रहती थी। उसकी ख़ाँसी लगातार बढ़ रही थी। कोविड का वायरस उसके फेफड़ों में दाखिल हो चुका था, लड़ाई जारी थी। कोलकाता में अजहर और उमा के पास लिटिल थेस्पियन का एक बड़ा परिवार था, अब भी है। वे सभी लड़के-लड़कियाँ उमा और अजहर के साथ खड़े थे। हमारा नैतिक समर्थन भी लगातार मिल रहा था लेकिन एक दिन! अचानक फेसबुक पर एक छोटी सी पोस्ट 'अजहर नहीं रहे' ने दिल दहला दिया। मेरे बहुत से दोस्त छूटे। अजहर के इस तरह से चले जाने का दुख घनीभूत होकर मन पर कब्जा मारकर बैठ गया। अजहर के साथ गुजारे हुए कई पल याद आने लगे।

मुझे याद है पिछली बार जब हम लौटने वाले थे तो उसी दिन सुबह-सुबह अजहर गाड़ी लेकर हमारे होटल आ गया था। मैं, शशि और अजहर। मेरा मन था वे स्टुडियो देखने का, जिनसे फिल्म इंडस्ट्री की शुरुआत हुई थी। लोकप्रिय नाटकों के वे आज भी केंद्र हैं। पहले हम लोग मिनर्वा स्टुडियो गए। देखा, जाना और बहुत सारी जानकारी हासिल हुई। उसके बाद

स्टार स्टुडियो और वहाँ पर रखा हुआ वह प्रोजेक्टर, जिसपर स्पूल चढ़ा-चढ़ाकर फिल्में दिखाई जाती थीं। वह दौर हमारा देखा हुआ है। अजहर एक मासूम बच्चे की तरह से हमें बहुत सारी जानकारियाँ देते हुए हमारे फोटो खींच रहा था। कितना सुखद लगता है उस क्षणों को सहेजना और कितना दुख देती है यह बात कि अब ऐसा क्षण पुनः नहीं लौटेगा। कम से कम अजहर के साथ तो बिलकुल नहीं। अजहर का कोई स्थानापन्न हो सकता है, इसकी भी कोई गुंजाइश मुझे दिखाई नहीं दिखती।

अजहर के काम का मूल्यांकन होना अभी शेष है। अजहर के लगभग सभी मौलिक, रूपांतरित

एवं अनूदित नाटक प्रकाशित होकर सामने आ चुके हैं। उसपर केंद्रित एक पुस्तक भी जल्दी ही आने की संभावना है। उसकी निर्देशकीय दृष्टि, उसका लेखकीय कौशल, उसकी अभिनय-क्षमता और रंगकर्म की गहरी समझ का रेखांकन होना अभी शेष है। शेष है यह देखना कि कोलकाता के माध्यम से उसने उर्दू और हिंदी रंगमंच के जो नए वातायन खोले, उनमें से हवाएँ कहाँ-कहाँ से आ रही हैं। जब भी कोलकाता के हिंदी एवं उर्दू रंगमंच का इतिहास लिखा जाएगा, वह अजहर और उमा के ज़िक्र के बिना और उनके काम को रेखांकित किए बिना अधूरा ही माना जाएगा।

संपर्क : एफ़-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027, partapsehgal@gmail.com

दूसरी अजहर आलम बन्नी पार्वती शॉ

एक हँसता खिलखिलाता व्यक्ति, जिसके हर काम में लय हो, कलम उठाने से लेकर कलम रखने तक में, चाय के पीने से लेकर खाना खाने तक में, चलने से लेकर अपने हर कार्य में मानों अभिनय की खोज करता। अजहर आलम जब याद आते हैं तो सबसे पहले स्मृतियों में निखर उठता है बोलती हुई आँखें, मुस्कुराता हुआ चेहरा, ऊर्जा से भरा देह, जुनून से भरा जज्बा और इस अंधेरी दुनिया में एक रोशनदान की तरह प्रकाशमान व्यक्तित्व।

मैंने अप्रैल माह 2019 में नाट्य संस्था 'लिटिल थेस्पियन' के रिहर्सल हॉल में पहली बार कदम रखा था। तब अजहर सर को पहली बार देखी थी। बहुत शांत, सहज और अनुशासन प्रिय व्यक्ति के रूप में मेरे मन पर छपे। उस दिन 'रूहें' नाटक की स्क्रिप्ट को पढ़ने का रिहर्सल चल रहा था, जिसमें उर्दू के शब्दों की बहुलता होने के कारण शब्दों के उच्चारण में जितनी सतर्कता और सावधानी से उच्चारण करने के ढंग पर उनके निर्देशकीय व्यक्तित्व की पहली झलक को देखी थी। जब तक कलाकार डायलॉग के एक-एक शब्द का उच्चारण सही ढंग से न कर ले, तब-तक वे उसे सिखाते रहते, चाहें दस से बीस बार, बीस से तीस बार ही करना पड़े अर्थात् पूरे तरीके से सीखा कर ही शांत होते। इसी डर से हर कलाकार शब्द उच्चारण को लेकर बोलने से पहले सोचते और अपने को सवाल पूछने के लिए तैयार करते। अजहर सर कभी भी ज्यादा डाँटते नहीं थे, वह जमकर मेहनत करवाते, यही उस गलती करने वाले की सजा थी जो उसके लिए जीवन में आगे जाकर उपहार बनता था। अजहर सर डाँटने का काम उमा मैम को सौंपते थे, वजह यह है कि वह बहुत ही कोमल हृदय के व्यक्ति थे लेकिन हाँ अनुशासन की कमी थोड़ी सी भी दिखें तो उनके गुस्से की सीमा यही थी कि वह उसे लिटिल थेस्पियन से बाहर का रास्ता दिखला दें। यदि कोई अनुशासन प्रिय और रंगमंच के प्रति समर्पित है तो उस कलाकार के पीछे उतनी मेहनत करते जितना की वह कलाकार भी अपने पीछे नहीं करता, हाँ बाद में भले ही यह जरूर होता कि वह कलाकार अजहर सर के इस गुण को थोड़ा ही सही अपने अंदर ले आता कि अपना सबसे अच्छा प्रदर्शन करना है।

7 जुलाई 2019 को भारतीय भाषा परिषद में उमा झुनझुनवाला के निर्देशन में नरेंद्र मोहन की कविता 'एक अदद सपने के लिए' का काव्य-मंचन 'भारतीय भाषा परिषद और लिटिल थेस्पियन' के तत्वावधान में हुआ था। तब अजहर सर अतिथि के तौर पर काव्य-मंचन देखने आए थे। यह काव्य-मंचन कोलकाता में एक अद्भुत प्रयोग था, जिसका श्रेय उमा झुनझुनवाला को जाता है, क्योंकि इसमें कविता, संगीत और प्रकाश का अनोखा संयोजन किया गया था, जिसे देखकर अजहर सर ने जो प्रतिक्रिया दी, वो स्मृतियों में हर कलाकार के मन-मस्तिष्क में अंकित रहेगा। सभी कलाकार काव्य मंचन के बाद हॉल में बैठे थे, सबकी धड़कने तेज थी, क्योंकि अजहर सर अपनी प्रतिक्रिया देने वाले थे, सबकी आँखें अजहर सर पर जा टिकी थी, उमा मैम भी प्रतीक्षा में थी कि अजहर क्या कहेगा ? ' तुम सभी ने तो कमाल कर दिखाया....कोई कह नहीं सकता कि एक दो को छोड़कर बाकी सभी कलाकार तीन महीने के वर्कशॉप वाले हैं...उमा को तो इसका श्रेय जाता ही है, लेकिन तुम सभी ने उसे बेहतरीन ढंग से निभाया, यह कोई आम बात नहीं" यह अजहर सर कह रहे थे।

उन्होंने सोलह कलाकारों में पाँच या सात कलाकारों की अलग-अलग विशेषता पर चर्चा की, सौभाग्य से इसमें एक मेरा भी नाम था। यह हम कलाकारों के लिए किसी पुरस्कार से कम नहीं था। इस तरह से अजहर सर का रोमाँचकारी प्रतिक्रिया कलाकारों में भी रोमाँच पैदा कर रहा था। तब पता चला कि एक प्रतिक्रिया भी आपके जीवन को पलटकर रख सकता है। यह वह अजहर आलम थे, जिनके अंदर नई पीढ़ी में उभरे कलाकारों के प्रति अगाध प्रेम और समर्पण था।

उमा झुनझुनवाला के निर्देशन में नाटक 'हज़ार ख्वाहिशें' के रिहर्सल में उमा मैम के साथ अजहर सर भी हमेशा रहते थे, जिस दौरान मैं चुपके-चुपके अजहर सर और उमा मैम को नाटक के बारीकियों पर बातचीत करते हुए देखा करती थी, जिसमें अजहर सर कई बार उमा मैम से असहमत होते, लेकिन इस असहमति के बीच दोनों मिलकर रास्ता निकालते, वह हम युवा कलाकारों के लिए एक प्रेरणा रही। रिहर्सल हॉल में कोई कह ही नहीं सकता कि उमा मैम और अजहर सर पति-पत्नी हैं, क्योंकि रिहर्सल हॉल से लेकर नाटक के मंचन तक केवल और केवल नाटक से लेकर रंगमंच की बात। रंगमंच के प्रति यह अजहर आलम का समर्पण अब कहाँ दिखेगा?

मैंने लिटिल थेस्पियन में कदम तब रखा था, जब मैं स्नातक की पढ़ाई खत्म कर स्नातकोत्तर में शुरुआत की थी, शुरू में मेरे लिए घर के काम, फिर यूनिवर्सिटी उसके बाद शाम में रिहर्सल करके रात तक घर जाना काफी कठिन था, तब मैं अजहर सर से रिहर्सल के बाद नाश्ता करते वक्त सवाल पूछी थी कि "सर, आप कॉलेज में पढ़ाते भी हैं फिर रंगमंच का इतना काम भी करते हैं, रोज रिहर्सल करवाते हैं, आप थकते नहीं हैं सर?" सर ने एक ही वाक्य में कहा,

"बिलकुल नहीं थकता, क्योंकि थिएटर जीने की कला सिखाता है।" जीवन में कला और कला में जीवन को पिरो करके जीवन जीने की कला देने वाले, मेरे लिए अजहर सर ही रहे। जब-जब मैं थक जाती हूँ, तब बस यह वाक्य याद करती हूँ और मन से सारी थकान दूर हो जाती है।

2019 के दिसंबर में छह महीने के बाद मुझे पता चला कि सर हिंदी के नहीं, उर्दू के प्रोफेसर हैं, जो कभी भी मुझे महसूस ही नहीं हुआ, क्योंकि उनकी जबान हिंदुस्तान की जबान रही, जिसमें हिंदी-उर्दू घुल मिलकर एक हो चुका था। भाषा के प्रति इतनी सहजता उर्दू के प्रोफेसरों में शायद ही कहीं दिखेगी। यही कारण है कि उनके नाटकों में न हिंदू है, न मुसलमान, वहाँ हिंदुस्तान है। इस घटना के बाद मैं अजहर सर के बहुत करीब हो गई थी।

2020 में लॉकडाउन की वजह से मिलना - जुलना वर्चुअल ही रहा, तब अजहर सर और उमा मैम ऑनलाइन काव्य-पाठ की शुरुआत करवाते हैं, क्योंकि उस लॉकडाउन के दौरान युवाओं में अवसाद की स्थितियाँ बढ़ रही थी, जिसमें कईयों ने आत्महत्या भी की। जुलाई 2020 में लिटिल थेस्पियन के वर्चुअल मीटिंग के दौरान अजहर सर और उमा मैम सभी कलाकारों से बात करते हैं जिससे वे हर कलाकार के व्यक्तिगत परिस्थिति से परिचित हो सकें। आत्महत्या करने वाले व्यक्तियों पर चर्चा हो ही रही थी कि तब अजहर सर के चेहरे का रंग मानों उड़ गया था। किसी के आत्महत्या करने पर इतना दुखी होना, अपने आस-पास के लोगों के प्रति चिंतित होना और उस समस्या के समाधान हेतु व्यवहारिकता लेकर आना, मैं किसी व्यक्ति में पहली बार देखी थी। अजहर सर हमेशा चाहते रहें कि युवा पीढ़ी लड़े, गिरे, खुद को संभाले, लेकिन हार न माने।

1 नवंबर 2020 के मे लॉकडाउन से मुक्त

हो चुके थे, तब आगामी नाटकों की तैयारी में रिहर्सल शुरू हो गया था। उन दिनों हम कलाकारों को अजहर सर और उमा मैम वर्कशॉप करवा रहे थे। तभी एक दिन केवल अजहर सर आते हैं। उस दिन वर्कशॉप में प्रत्येक कलाकार को पाँच से दस मिनट के अंदर एक प्रस्तुति देना था। हर किसी ने अपनी-अपनी कोई कहानी गढ़ी और उसे प्रस्तुत किया। उसमें मैंने निराला की कविता 'जागो फिर एक बार', (भाग-2) की अभिनयात्मक प्रस्तुति देती हूँ, वहीं नेहा यादव धारावाहिक के द्रौपदी के वक्तव्य को आधार बनाकर प्रस्तुति दी। अजहर सर उनलोगों से खुश हुए, जिन्होंने अपनी मौलिक प्रस्तुति दी, क्योंकि उसमें स्वयं की रचनात्मकता थी। वहीं मुझसे और नेहा से निराश होते हुए कहते हैं कि किसी का लिखा हुआ करना और किसी का नकल करना आसान है, लेकिन खुद से रचनात्मक होकर मौलिकता को बनाए रखकर करना आसान नहीं और इसी में श्रेष्ठता है। अजहर सर हर कलाकार को गाँठ बाँध लेने को कहते थे कि "कुछ नया करो जो सिर्फ और सिर्फ तुम्हारी खूबी को दर्शाता हो।"

'जश्न-ए-रंग' सात दिवसीय नाट्य उत्सव है, जिसका आयोजन नाट्य-संस्था 'लिटिल थेस्पियन' पिछले 10 वर्षों से करता आ रहा है। कोविड के कारण 2020 का 'जश्न-ए-रंग' 2021 के मार्च में हुआ, जिसमें 25 मार्च 2021 को अजहर सर के निर्देशन में ही 'रूहें' नाटक का मंचन था। अजहर सर के साथ 'लिटिल थेस्पियन' के कलाकारों का यह अंतिम नाटक है, तब यह कोई नहीं जानता था! नेपथ्य में हम सभी कलाकार खुद को तैयार कर रहे थे। तभी मैं देखती हूँ कि अजहर सर को पता चलता है कि रीता गांगुली आई हैं तो उनका जोश दुगुना हो गया था। आज भी किसी व्यक्ति के प्रति इतना आदर,

इतने बड़े निर्देशक होने के बावजूद, अजहर सर का यह रूप मेरे लिए आश्चर्य से पूर्ण सुखद अनुभूति रही। पच्चीस मार्च शाम साढ़े छह बजे ज्ञान मंच में नाटक का मंचन हुआ, सारे दर्शकगण खड़े होकर ताली बजा रहे थे। रीता गांगुली मंच पर आती हैं, हम सभी कलाकार भी मंच पर ही अपने स्थान पर खड़े हैं, वह जैसे ही सभी कलाकारों को देखती हैं तब उनकी आँखें आँसुओं से भर गया था। अजहर सर की आँखों में आँसू नहीं थे, लेकिन उनका चेहरा खुशी, गर्व, आदर, श्रद्धा और प्रेम से खिल उठा था। तब उमा मैम रीता गांगुली को कहती हैं कि "आपके यह आँसू हमारे लिए पुरस्कार हैं" तब अजहर सर रीता गांगुली को निहारे जा रहे थे। उस क्षण मुझे लगा कि मैं किसी स्वर्ग में आ गई हूँ, जहाँ रंगमंच को ही जीवन मानने वाले व्यक्ति को सबसे बड़ा पुरस्कार मिल रहा है! रीता गांगुली के आँखों से आँसू के बूँद नहीं, मोती टपक रहे हैं।

इसी 'जश्न-ए-रंग' में हम सभी कलाकार फुर्सत के पलों में तस्वीरें खिंचवा रहे थे। 'लिटिल थेस्पियन' की पूरी टीम एक फ्रेम बनाकर बैठे थे, लेकिन जब तस्वीर खींचने को लेकर प्रश्न उठा तो अजहर सर तुरंत उठे और तस्वीर लेने लगे, उन्होंने किसी को उठने को नहीं कहाँ। मैंने जब कहाँ भी कि मैं लेती हूँ सर, तब अजहर सर कहते हैं कि "तुम सब रहो, मैं लेता हूँ" मानों अजहर सर चाहते थे कि सब हों, कोई न छूटें, भले मैं न रहूँ...! उस वक्त लगा कि जब त्याग की मूरत बनेगी तो वह बिलकुल अजहर आलम जैसी होगी।

27 मार्च 2021 को हमसब मिलकर विश्व थिएटर दिवस के उपलक्ष्य में हर कलाकार अपनी-अपनी प्रस्तुति देते हैं। हम सभी ने अजहर सर को भी कुछ करने को कहाँ तो वह गीत गाये जो

अपनी बेटी गुंजन के लिए शैशावस्था में लोरी सुनाते हुए गाया करते थे। अजहर सर को हम सभी कलाकार एकटक देख रहे थे कि यह कौन सा गीत है, पहले तो कभी नहीं सुना। उस गीत की क्या धुन है पता नहीं, पर उस क्षण गाते हुए अजहर सर दिल को छू गए। शायद इसलिए कि उस दिन अजहर आलम नहीं, गुंजन के पिता उभरकर आए थे...

20 अप्रैल सुबह 8 बजे मेरी इतु मैम फोन करके पूछती हैं कि "हम क्या सुन रहे हैं कि अजहर भाई नहीं रहे !"

"पता नहीं मैम पूछ कर बताती हूँ" हड़बड़ाते हुए मैंने कहा था।

पता करने पर पता चला कि जो सुना वह सच है। 27 मार्च 2021 को हम सभी कलाकार अजहर सर को अंतिम बार देख रहे थे यह मालूम था। 20 अप्रैल 2021 म्युनिसिपल एम्बुलेंस की गाड़ी से कब्रिस्तान जाने से पहले कुछ मिनटों के लिए अजहर सर को देखने को मिला। अजहर सर सामने थे, पर छू न सकें.... उमा मैम लिपट जाना चाहती थी पर छूने तक की अनुमति नहीं थी। बेटी गुंजन अपनी माँ को पकड़े हुए बदहवास समझाए जा रही थी। बेटा आदिल चुप-चाप सब कुछ देख रहा था, बिलकुल चुप होकर। उमा मैम

चीखते हुए कहती हैं अजहर...अजहर...अजहर... अजहर.. अजहर.... साथ जीने मरने की कसमें खाये थे.... मेरी जान तो इन दोनों में लटका गए!....कैसे जाऊँ..... धोखा दे गए" अजहर... धोखा दे गए'। वहाँ उपस्थित सभी का कलेजा फट गया था, बस लहू के बूँद नहीं गिरे थे!अथाह पीड़ा। आज भी लिखते हुए धड़कने तेज हो जाती हैं। अंतिम दर्शन में जब अजहर सर को देखी तो अजहर सर का चेहरा गुस्सा और भय से भरा था, मानों वह और जीना चाहते थे, दुनिया को बदलने के लिए उनकी आत्मा छटपटा रही है। अजहर सर को देखते वक्त चीखें निकली थी पर कुछ भी न कहाँ गया..... बस इतना चाहती हूँ कि दूसरी 'अजहर आलम' बनीं।

यदि अजहर आलम के लिए कुछ करना चाहते हैं तो रंगमंच को प्यार करें, नाटक देखने और करने की संस्कृति को बढ़ावा दें, रंगमंच के बीच पसरे उदासीनता के अँधेरे के विरुद्ध एक दीया जलाए, अजहर आलम अब वहीं दिखेंगे।

आज जब हम रिहर्सल हॉल में जाते हैं दो कुर्सियाँ अभी भी लगी हैं, एक में उमा मैम बैठी हैं दूसरे पर अजहर सर ही होते हैं बस शरीर नहीं दिखता, लेकिन आत्मा की सुगंध से संवाद करते हैं अब....!

विद्यार्थी, रंगकर्मी

ओम भारती : बेचैन रूह और अनंत प्यास का सफर सेवाराम त्रिपाठी

‘क्या गिर गया इस अच्छे विशेषण का /सूचकांक इतना /इस संशय के समय में/ क्या अच्छाई खो चुकी तमाम आकर्षण /क्या कोई वजह /या इच्छा भी नहीं रही इस युग में/ अच्छा होने के लिए /या नहीं रहा इतना भी अच्छापन प्रकृति में/कि आ जाता किसी तरह /’ (ओम भारती)

मुझे स्वयं याद नहीं आ रहा ओम भारती से मैं पहली बार कब मिला था। मुझमें और उसमें लगाव और जुड़ाव कब पनपा। ठीक-ठीक नहीं कह सकता शायद 1978 -1979 से। यह शायद बहुत मानीखेज मामला है। वह भीतर जितना चुप था बाहर उतना ही मुखर, वाचाल और खिलंदड़ापन। अपने में चुप रहना बाहर उतना ही मुखर रहना। अपनों के साथ दिलकश अंदाज में बतियाना। उसकी हँसी उसका अंदाजेबया मैं बराबर याद करता हूँ। उसके कई संग्रह मेरे पास हैं। कितने मनुहार से वह देता। लेकिन, कभी लिखने का कोई आग्रह नहीं करता था। यह उसका प्यार था। उसमें स्नेह का समुद्र लहराता था और सारा खारापन दूर होता था और छलक जाती थी उसकी मिठास। कई बार उसकी कविताओं पर लिखने की कोशिश की कुछ वाक्य लिखे कुछ शब्द गूँजे, फिर सोचा अभी क्या जल्दी है लिखेंगे? मेरा वह समूचा इत्मीनान अचानक कल बिखर गया। यही हाल मेरे साथ मेरे अजीज मित्र हरिशंकर अग्रवाल के साथ भी घटा। अभी जो मेरे साथी हैं कब से उनपर लिखने का मन है, बल्कि प्रतिज्ञा है कि अब तो लिखना ही लिखना है। वे मेरे अत्यंत प्रिय हैं। उसमें मलय, सुबोध श्रीवास्तव और पूर्णचंद्र रथ आदि शामिल हैं।

ओम के साथ कितने सम्मेलन कितने दिन कितने संदेश और कितना संग साथ हम लोगों का रहा है। 1915 की लंबी बीमारी के बाद भोपाल के तीन चार कार्यक्रमों में जाना हुआ। खाली समय में होटल से जब भी फोन किया वह जरूर बिना नागा आए। लगातार ठहाके लगाता रहा। उसका मिलना, हंसना गले लगाना। दिलखोल कर बतियाना उस सूरत को मैं कभी जीवन भर नहीं भूल पाऊंगा। और न उसकी आँखों को न हँसी को और न आत्मीयता को। वह अपनी अंदरूनी बातें प्रायः दूसरों से शेयर नहीं करता था। दुख उसके भीतर थे प्रायः जिसे वह बाहर नहीं निकालता था, उसके तहखाने में वे हर हाल में सुरक्षित रहते। जितना वह अंदर टूटा था उससे ज्यादा वह बाहर हँसता था। कभी-कभी टूटे हुए आदमी अपनी उस टूटन को हँसी से ढक लेते हैं। यह उसका स्वभाव था। वह अपनी टूटन को अंदर ही अंदर जज्ब कर लेता था। उसका पारिवारिक जीवन और उसकी अंदरूनी कड़ियाँ हम किसी तरह खोज नहीं पाए। मेरे भोपाल में नौकरी के दौरान अक्सर वह मेरे ऑफिस हिंदी ग्रंथ अकादमी में आता और घंटों बैठता। देश दुनिया की और साहित्य संस्कृति के तमाम रंगतों की ढेर सारी बातें करता। कभी-कभी जहाँ मैं रहता था, यानी पीएनटी चौराहा के द्वारिकापुरी वाले घर में वह आता कविता पर बतियाता था और अन्य मुद्दों पर तफसील से बातें होती। उसकी एक कविता स्मरण कर रहा हूँ - ‘शीर्षक है जिंदगी के आसपास।’

एक दूसरे में/ गड्डु मड्डु हो रहा /समय है /अखबार पढ़िए तो दोस्तों की दस्तकें/ फाइलें देखिए तो बीवी की बीमारी/ बच्चों का एडमिशन सब्जियाँ खरीदते/ कपड़े धोते-धोते बड़े हाकिम का दौरा / कविताएँ लिखने बस बैठने का इरादा /कि फिरकनी सी /घूमती/ आसपास जिंदगी!/'

एक सोच था उसका। ओम कविता में जीता था, हँसता, मुस्कुराता था। खेलत-कूदता

फाँदता था और अपने जमाने का सच बखान करता था। उसकी जिंदगी के महासंग्राम से निकला करती थी अनेक चीजें। 1986 में लिखी एक कविता अचानक याद आ रही है। शीर्षक है 'भूल जाएगा। 'ज्यादा दिन तक/ नहीं चलेगा/ देखो इसमें/झोल जाएगा /झूठ नहीं टिकता/बस्ती में/करके बिस्तर/गोल जाएगा' लेकिन दुर्भाग्य है कि उसका यह सोच अभी तक सही नहीं हो पाया। अब झूठ का साम्राज्य दिन-ब-दिन फैल रहा है। भोपाल की अकादमी से वापस आने के बाद ओम रीवा आए था। वह यहाँ लगभग सात दिन रहा। विजय अग्रवाल उसका बहुत ख्याल रखते। रहता मेरे यहाँ और सभी स्थानों में हम लोग घूमते। उसकी इंसानियत के अनेक रंग मैंने उस दौर में देखे और अनुभव किए। एक दिन मेरे यहाँ हरिशंकर परसाई पर एक संगोष्ठी आयोजित हुई थी। उसने परसाई जी की कविताएँ सुनाई और उनकी जिंदगी के कई अनछुए पहलुओं की जानकारी दी थी। सब को ज्ञात है कि ओम भारती बहुपठ, बहुश्रुत और जन जीवन से बहुत गहराई से जुड़ा आदमी है। वह जितना बड़ा लेखक है उतना ही बड़ा मनुष्य भी। वह अपने व्यक्तित्व की नई ऊष्मा से हमें सराबोर कर गया। वह जितना साधारण आदमी लगता था उतना ही असाधारण था उसका मेल मिलाप।

काफी लंबे समय तक उसे एक कृत्रिम किस्म का आदमी समझा जाता था। उसकी कविताएँ चमकदार कविताएँ नहीं थीं और न बहुत ज्यादा उद्धरणीय। वे सादगी से जीवन का यथार्थ बखानती। उसमें आकर्षण करने के लिए कभी कोई जगह नहीं थी। 'जो सोचा नहीं जाता, सोचता हूँ/कहता हूँ/जो कहाँ नहीं जा रहा/पढ़ता हूँ जो पढ़ा नहीं गया/कोशिश कर गढ़ता हूँ/जो गढ़ा नहीं गया/(नहीं नामक कविता) ओम भारती में साधारणता बहुत थी। वह हर जगह और हर

हाल में जी सकता था और रह भी लेता था। कोई ताम-झाम नहीं और न अलग तरह की बनावटी मुद्राएँ। वह कविताएँ लिखता रहा जीवन भर। गद्य भी लिखा कहानियाँ और आलोचनाएं। उसने संपादन भी किया। उसकी कविताओं को कोई खास तवज्जो नहीं मिली। जो भी लिखा गया वह छुटपुट ही था। वह छुटपुट में ही निवास करता रहा।

उसके संपादन में वरिष्ठ कवि मलय जी की रचनात्मकता का मूल्यांकन करती एक किताब आई थी जीता हूँ 'सूरज की तरह।' उसकी भूमिका में वह लिखता है - 'उनकी लंबी सृजन सक्रियता और कृतित्व, विचार का विषय है। मेरा और यहाँ प्रस्तुत अनेक लेखकों का संबंध उनसे रहा है। वर्षों से लिखने-पढ़ने के संसार में होना हमें उन पर सोचने का हक भी देता है। और रही प्रयोजन की बात तो स्पष्ट है कि हम चाहते हैं कि मलय जी के लिखे पर ध्यान दिया जाए, क्योंकि उसमें सबके लिए सीखने को कुछ अवश्य है।'

मैं सोचता हूँ ये बातें ओम भारती के लिए भी उतनी ही सही और मौजू हैं। मूल्यांकन विश्लेषण होना न होना भी एक परिधि है। आगे पीछे यह सिलसिला बदस्तूर जारी रहेगा। ओम भारती की एक कविता है 'सनसनाता' आता है झूठ। एक अंश पढ़ें। 'कहाँ हो कवि मित्रों' निकल आओ घरों से/सामना करना होगा समय का साहस से/पूँजीवादी झूठ के विराट अत्याचार के बीच/अपने ही शिविर में मार डाला जाएगा/वंचितों का स्वप्न, जरा सी भी चूक से/

कोरोना के पूर्व भोपाल में उससे जमकर मुलाकात हुई थी। मैं उससे कह रहा था कि आठ-दस दिनों के लिए रीवा आ जाओ। वह भी वादा करता रहा कि जल्दी ही आता हूँ। उसका वादा अभी भी वादा ही है जो अब कभी पूरा नहीं हो सकता। ओम भारती की दोस्ती और यादों को सलाम। (12 दिसंबर 2021)

संपर्क : रजनीगंधा 06, शिल्पी उपवन अनंतपुर रीवा (म.प्र.)-486002

मुक्तचिह्न अक्तूबर-दिसंबर 2021

विनोद दुआ को याद करते हुए

डॉ. सुधा उपाध्याय

खुदा करे सलामत रहे

किसी दुआ की तरह

एक तू..

दूसरा मुस्कुराना तेरा....

विनोद मरा नहीं, विनोद मरते नहीं- उनके एक अभिन्न मित्र की पंक्तियाँ उधार लेते हुये अपनी बात शुरू करती हूँ-

विनोद दुआ का व्यक्तित्व ही ऐसा था बिंदास बोल, निर्भीक नजरिया, विनोदमयी मुस्कान हमारे जनतंत्र के पहलू की छवि किसी दुआ से कम ना थी। बोल जो नपे-तुले संयमित मर्यादित नजर साफ पारदर्शी जो आज दुर्लभ है क्योंकि तमाम वैचारिक चश्में कमिटेड होते हैं। राजनीतिक पार्टियों के जबकि विनोद दुआ के पास स्पष्ट नजरिया भी था। समय व समाज को जीवंत कर देनेवाली जिजीविषा से भरपूर मुस्कान भी थी।

विनोद दुआ साल 1996 में रामनाथ गोयनका पत्रकारिता सम्मान पाने वाले पहले टीवी पत्रकार थे। उन्हें केंद्र में मनमोहन सिंह सरकार के वक्त 2008 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। पत्रकारिता में सर्वश्रेष्ठ योगदान के लिए मुंबई प्रेस क्लब ने जून 2017 में उन्हें लाइफटाइम अचीवमेंट रेड लिंक अवार्ड दिया था। दुआ का जन्म 11 मार्च 1954 को हुआ था। विनोद दुआ का मतलब पार्टियाँ, हर मौके, बेमौके पार्टियाँ लेकिन अनौपचारिक बिना दिखावे की। किस्से, लतीफे और चुटकियाँ, हंसना, हंसाना, और बेलौस जीना। उनकी बेटी स्टैंड-अप मल्लिका में यह गुण शायद उनसे ही आए होंगे। पत्रकारिता से दूर जब उन्होंने हिन्दुस्तान की सड़कों और गलियों और ढाबों के लोकल फूड पर एनडीटीवी पर कार्यक्रम किया 'जायका इंडिया का, तो उसे सिर्फ देखना नहीं होता था, आप उसमें उस फूड का ज़ायका महसूस कर सकते थे। उनकी दूसरी बेटी बकुल क्लिनिकल साइकोलोजिस्ट हैं, शायद वो किसी दिन बेहतर तरीके से समझा पाएं। उनका परिवार पाकिस्तान के डेरा इस्माइल खान से विभाजन के वक्त दिल्ली आए था। कम लोगों को मालूम होगा कि विनोद कभी कार्यक्रम की स्क्रिप्ट नहीं तैयार करते थे। न प्रॉम्प्टर पर पढ़ते थे। बेधड़क, सीधे, दो टूक, बिंदास। कभी-कभी कड़ुए हो जाते, पर अमूमन मस्त अंदाज में रहते। 'परख' के लिए आतंकवाद के दिनों में पंजाब के मुख्यमंत्री बेअंत सिंह से बात की। उन्हें कुछ गाकर सुनाने को कहाँ। ना-ना-ना करते गवा ही बैठे। विनोद दुआ का अपना विशिष्ट अंदाज था। इसमें उनका बेलागपन और दुस्साहस शामिल था। 'जनवाणी' कार्यक्रम में वे मंत्रियों से जिस तरह से सवाल पूछते या टिप्पणियाँ करते थे, उसकी कल्पना करना उस ज़माने में एक असंभव सी बात थी। सरकार नियंत्रित दूरदर्शन में कोई ऐंकर किसी शक्तिशाली मंत्री को ये कहे कि उनके कामकाज के आधार पर वे दस में से केवल तीन अंक देते हैं तो ये उसके लिए बहुत ही शर्मनाक बात थी। मगर विनोद दुआ में ऐसा करने का साहस था और वे इसे बारंबार कर रहे थे। इसीलिए मंत्रियों ने प्रधानमंत्री से इसकी शिकायत करके कार्यक्रम को बंद करने के लिए दबाव भी बनाया था, मगर वे कामयाब नहीं

हुए। विनोद दुआ ने अपना ये अंदाज कभी नहीं छोड़ा। आज के दौर में जब अधिकांश पत्रकार और ऐंकर सत्ता की चाटुकारिता करने में गौरवान्वित होते नजर आते हैं, विनोद दुआ नाम का ये शख्स सत्ता से टकराने में भी कभी नहीं घबराया। लोकप्रियता के शिखर पर रहते वक्त भी वो ओढ़ी हुई गंभीरता के साथ नहीं रहते थे, एक जिंदादिल इंसान, जोश खरोश से भरा हुआ, अपने सहयोगियों को दोस्त मानने वाला। सड़क पर भुट्टा खाने, नमक मसाले वाली मूली खरीदने और गोल गप्पे खाने वाला विनोद दुआ बनना मुश्किल काम है। विनोद दुआ हिंदी टीवी पत्रकारिता में एक जानेमाने पत्रकार थे जिन्होंने अपने करियर की शुरुआत 'युवा मंच' से की थी जो दूरदर्शन पर युवाओं के लिए एक कार्यक्रम था। हालांकि उन्हें प्रसिद्धि उस चुनाव विश्लेषण से मिली जिसकी सह एंकरिंग उन्होंने 1984 में प्रणय राय के साथ दूरदर्शन पर की थी। विनोद दुआ की राजनीति से लेकर पाक कला तक में व्यापक दिलचस्पी थी। उन्होंने एनडीटीवी के लिए लोकप्रिय पाक कार्यक्रम 'ज़ायका इंडिया का' को प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने भारत के विभिन्न शहरों और कस्बों की अलग-अलग खाद्य संस्कृतियों की खोज की। उन्होंने 'द वायर' (हिंदी) के लिए 'जन गण मन की बात' कार्यक्रम की एंकरिंग भी की।

उन्होंने कभी इस बात की परवाह नहीं की कि सत्ता उनके साथ क्या करेगी। सत्तारूढ़ दल ने उनको राजद्रोह के मामले में फँसाने की कोशिश की, मगर उन्होंने लड़ाई लड़ी और सुप्रीम कोर्ट से जीत भी हासिल की। उनका मुकदमा मीडिया के लिए भी एक राहत साबित हुआ। हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू कई भाषाओं पर विनोद दुआ की पकड़ अद्भुत थी। प्रणय राय के साथ चुनाव कार्यक्रमों में उनकी ये प्रतिभा पूरे देश ने देखी और उसे सराहा। त्वरित अनुवाद की क्षमता ने उनकी एंकरिंग

को एक पायदान और ऊपर पहुँचा दिया। देश की पहली हिंदी साप्ताहिक दृश्यात्मक पत्रिका 'परख' की लोकप्रियता इसका प्रमाण थी। इस पत्रिका के वे न केवल ऐंकर थे बल्कि निर्माता-निर्देशक भी थे। इसके लिए उन्होंने देश भर में संवाददाताओं का जाल बिछाया और विविध सामग्री का संयोजन करके पूरे देश को मुरीद बना लिया। वे अपने सहयोगियों को भरपूर आजादी देते थे। ये और बात है कि उस समय दूरदर्शन में हर रिपोर्ट प्रीव्यू होती थी और अधिकारी बहुत सारी काट-छँट करवाते थे, मगर विनोद दुआ ने कभी इस पर आपत्ति नहीं की कि फलॉ स्टोरी में ये क्यों था या ये क्यों नहीं था। इसी दौर में वे 'ज़ी टीवी' के लिए एक कार्यक्रम चक्रव्यूह करते थे। ये एक स्टूडियो आधारित टॉक शो था, जिसमें ऑडिएंस के साथ किसी मौजूद सामाजिक मसले पर चर्चा की जाती थी। इस शो में विनोद दुआ के व्यक्तित्व और एंकरिंग का एक और रूप देखा जा सकता था। विनोद दुआ की पत्रकारिता की समझ का एक उदाहरण सहारा टीवी पर उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला कार्यक्रम 'प्रतिदिन' भी था। इस कार्यक्रम में वे पत्रकारों के साथ उस दिन के अखबारों में प्रकाशित खबरों की समीक्षा करते थे। इस कार्यक्रम में उनकी भूमिका को देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि ऐंकर पत्रकार नहीं है। विनोद दुआ ज़मीन से जुड़े हुए व्यक्ति थे। उनका परिवार विभाजन के वक्त पाकिस्तान के डेरा इस्माइल खान से भागकर आए था और उसने वे तमाम दुश्वारियाँ झेली होंगी जो विभाजन पीड़ितों को झेलनी पड़ी थीं। इसलिए उनमें वह विनम्रता थी। बहरहाल, विनोद दुआ का इस तरह ऐसे समय में जाना पत्रकारिता की नहीं, लोकतंत्र की भी एक बहुत बड़ी क्षति है। उनकी उपस्थिति हम जैसे बहुत सारे लेखकों-चिंतकों को तो प्रेरणा देती ही थी, उन लड़ाकों

को भी लड़ने और सत्ता के दबावों को चुनौती देने की हिम्मत देती थी जो लोकतंत्र और साझी संस्कृति को बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

आज की पीढ़ी या आने वाली नस्लें पता नहीं विनोद दुआ को कितना जानती है और किस रूप में उन्हें पहचानेंगी। व्हाट्सऐप-ज्ञान और ट्रोलिंग के इस दौर में लॉछित-कलंकित करने की प्रवृत्ति किसी के योगदान को नष्ट-भ्रष्ट करने में क्षण भर नहीं लगाती। लेकिन जब कभी विनोद दुआ का संपूर्णता में मूल्यांकन होगा, तो उन्हें एक पत्रकार योद्धा के तौर पर जाना जाएगा। धुंध छूटने के बाद ही आने वाली नस्लें तब जान पाएंगी कि विनोद दुआ नाम का एक ऐंकर था। इतिहासकार एस. इरफान हबीब ने कहा कि - वह भारत के सबसे विश्वसनीय पत्रकारों में से एक थे। उन्होंने ट्वीट किया, "वह कुछ उन पत्रकारों में थे जिनकी रीढ़ की हड्डी सलामत थी, एक प्रिय मित्र और राजनीति, भोजन, संगीत और उर्दू शायरी के बारे में बात करने में बेहद निपुण।

पिछले महीने फोन पर एक संक्षिप्त बातचीत हुई थी।"

सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ समाजसेवी और पत्रकारिता जगत के गणमान्य लोगों ने अपने अपने अंदाज से विनोद दुआ को अंतिम विदाई दी। उल्लेखनीय व मार्मिक पंक्तियों से बेटी मल्लिका दुआ ने अपने इंस्टाग्राम पर लिखा, "हमारे निर्भीक, निडर और असाधारण पिता विनोद दुआ का निधन हो गया है। उन्होंने एक अद्वितीय जीवन जिया, दिल्ली की शरणार्थी कॉलोनियों से शुरू करते हुए 42 वर्षों तक पत्रकारिता की उत्कृष्टता के शिखर तक बढ़ते हुए, हमेशा सच के साथ खड़े रहे।" उन्होंने लिखा, "वह अब हमारी माँ, उनकी प्यारी पत्नी चित्रा के साथ स्वर्ग में हैं, जहाँ वे गीत गाना, खाना बनाना, यात्रा करना और एक दूसरे से नॉकड्रॉक जारी रखेंगे।"

कभी अलविदा ना कहना -विनोद का दौर, विनोद की जीवंतता और विनोद की निर्भीकता हमारे लिये अमिट है अविस्मरणीय है। नमन विनम्र श्रद्धांजलि ओम शांति।

संपर्क : असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

जिजीविषा से भरा प्रखर और जीवंत व्यक्तित्व - मधुलता गुप्ता

इतु सिंह

वो सपनीली आँखें जो जीवंत थी, जीती थीं जीने की प्रेरणा देती थीं, मैंने उन आँखों को कभी-भी मौत से खौफ खाते नहीं देखा था। कई बार मौत से लड़ कर जीत भी गई थी और यकीन नहीं होता कि इस बार ऐसा क्या था कि उनका मन लौटने को न हुआ। अभी तो कितना कुछ कहना और सुनना बाकी था। आप का जाना हमारे लिए कैसा आघात था यह शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं। अब तो केवल स्मृतियाँ शेष हैं।

एक बेहद ही शालीन और व्यवस्थित व्यक्तित्व की धनी मधुलता गुप्ता से मेरी मुलाकात बी.ए. के विद्यार्थी के रूप में हुई थी। दोनों के लिए ही जालान कॉलेज में यह पहला साल था उनका शिक्षिका के रूप में और मेरा विद्यार्थी के रूप में। स्वाभाविक ही था कि अपने शुद्धाती छात्राओं से उनका बहुत की खास संबंध बना। वे मेरी सबसे प्रिय शिक्षिका थीं और मेरा सौभाग्य रहा कि मैं उनके कुछ प्रिय छात्राओं में से एक थी। पहले-पहल तो उनसे औपचारिक संबंध रहा और कब वह विकसित होकर बिल्कुल अनौपचारिक हो गया पता ही नहीं चला। वैसे तो मैं बहुत ज्यादा शिक्षकों से घुलती-मिलती नहीं थी पर मधु दी के करीब आने का मौका तब मिला जब मैं कॉलेज में अंशकालीन शिक्षिका बनी। ऊपर से बेहद सख्त और अनुशासनप्रिय मधु दी के भीतर की एक भावुक और कोमल स्त्री से तब मेरा परिचय हुआ। वह सारी दुनिया को देखना चाहती थीं, घूमना तो उनका पैशन ही था। घूमने की चर्चा होते ही उनकी आँखें चमक उठती थीं। उनकी घुमक्कड़ी प्रकृति से उनके आसपास के सभी लोग परिचित थे।

मधु दी को सारी दुनिया अपनी लगती थी, उसमें मुझ जैसे न जाने कितने ही लोग बसते थे। हम बेतकल्लुफ होकर उनसे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को साझा कर पाते थे। सैकड़ों की संख्या में छात्राएँ हैं जिनकी उन्होंने कई तरह से सहायता की थी। मुझे जब भी लगा कि कुछ ऐसी समस्या है जिसका समाधान उनके पास हो सकता है तो उनसे कहाँ और वे हर तरह से मदद भी करती थीं। कई बातें तो ऐसी भी हैं कि जिसे उनके सिवा किसी और को कभी कहाँ ही नहीं। हर समय किसी की मदद को इतना तत्पर कोई दूसरा व्यक्ति मैंने नहीं देखा।

कहाँ तक कह सकूँगी पता नहीं पर मधु दी का व्यक्तित्व सामान्य नहीं था, वे बेहद जुझारू थीं और जहाँ भी कुछ अनुचित लगता वे प्रखर स्वर में उसका विरोध करती थीं। गुस्सा तो उनकी नाक पर रहता पर वह कभी दिल तक नहीं उतरता था। अभी जिस पर नाराज हैं और अगले ही क्षण उसके मदद के लिए तत्पर। उनका बाहर भीतर एक जैसा था, जिस पर नाराज होना होता सामने ही होती थी, पीठ पीछे तो वे किसी का भी बुरा नहीं सोचती थीं।

विद्यार्थी जीवन में हम उनके जैसा होने की कल्पना करते थे। उनका सजना-सँवरना हमें प्रेरित करता तो उनका पढ़ना लिखना भी। हमें कहीं कुछ असुविधा हो वे हर तरह से लगकर मदद करतीं। जब हम सहकर्मी बने तो मैंने देखा कि वे कभी भी यह अहसास नहीं होने देती कि कभी वह मेरी शिक्षिका थीं और मुझे हमेशा बराबरी का अहसास कराती रहतीं। वे अपनी कमियों को रेखांकित करने पर बड़ी सहजता से मुस्कुरातीं और कहती कि हाँ सुधारने की कोशिश करूँगी। जैसे मेरा उनसे बार-

बार यह कहना - 'मधु दी आप अपनी पीएच.डी. का काम क्यों नहीं पूरा करती?' वे आश्वासन देती - 'हाँ करूँगी।' पर कुछ दिनों बाद मुझे ये पता चल गया था कि वे सचमुच ये करना ही नहीं चाहती। जो नए विषयों पर जानने को हमेशा तत्पर रहती और हमेशा परिश्रम करती थीं उनके लिए पीएच.डी. तो मामूली बात थी। पर मजे की बात यह कि अपने विद्यार्थियों को वे इसी डिग्री के लिए प्रेरित करती थीं और उनकी सफलता पर प्रसन्न भी होती थीं।

शारीरिक असुविधाओं के बावजूद उनका पढ़ना-लिखना जारी था। घर पर ढेरों किताबें थीं, साथ ही कई पुस्तकालयों से किताबें लाकर स्वयं पढ़ना और दूसरों को भी देना।

लॉकडाउन ने जब हमें घरों में कैद कर दिया तो वे नई तकनीक से क्लास लेना भी सीखती रहीं और फोन पर इसे लेकर लंबी बातचीत होती। कम्प्यूटर के विविध तकनीकों को जानने के लिए वे मुझसे हमेशा बात करती थीं और हमेशा सीखने को

तत्पर। सच उनसे कितना सीखना बाकी था।

घूमने के साथ ही वे खाने और पहनने की भी बेहद शौकीन थीं। ममत्व से भरी उनकी बातें तो थी हीं, भोजन भी वे बहुत सुस्वादु बनाती थीं। जब भी उनके घर जाना हुआ वे कुछ विशेष बनाकर रखतीं, जिसका स्वाद आज भी याद है। जैसे वे पढ़ने की शौकीन वैसे ही खाना बनाना सीखने और खिलाने की शौकीन। हमलोगों ने बहुत बार उनके घर बैठकर साहित्यिक गोष्ठियाँ की हैं जिसमें उनकी मेहमान नवाजी याद आती है। जब भी सब लोगों के मिलने का मन होता उनका घर सबसे सुलभ और सर्व स्वीकृत ठिकाना था। मधु दी से जब-जब बात हुई वे यह जरूर कहतीं कि घर आओ मिलकर ढेर सारी बातें करनी हैं, योजनाएँ बनानी हैं। तब तरह-तरह के कारण बताकर हमारा जाना टलता था और अब प्रतीक्षा रहती है कि कब फोन बजे और उधर से मधु दी की मधुर आवाज आए - 'हैलो, इतु घर आओ न बहुत सी बातें करनी हैं।' काश....

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, खिदिरपुर कॉलेज, कोलकाता - 700023,
मो. : 9432355315

सरकारी सेवाओं में हिंदी

डॉ. अमरनाथ

पिछले साल का यूपीएससी का परिणाम ऐतिहासिक और अभूतपूर्व था। हिंदी माध्यम वाले सफल अभ्यर्थियों की संख्या सिर्फ तीन प्रतिशत रह गई। 97 प्रतिशत अभ्यर्थी अंग्रेजी माध्यम वाले सफल हुए। हिंदी माध्यम वाले अभ्यर्थियों की आत्महत्याओं की खबरें अब आमतौर पर आती रहती हैं। लोग इन खबरों पर ध्यान नहीं देते। मैंने समस्या की तह में जाने की कोशिश की तो सिर घूम गया।

देश में अराजपत्रित कर्मचारियों के चयन के लिए कर्मचारी चयन आयोग (स्टाफ सलेक्शन कमीशन) सबसे बड़ा संगठन है। इस संगठन की परीक्षाओं से हिंदी को पूरी तरह बाहर का रास्ता दिखाया जा चुका है। मैंने उसकी वेबसाइट पर जाकर देखा, अध्ययन किया तो सकते में आ गया। कंबाईंड ग्रेजुएट लेबल की परीक्षा जो तीन सोपानों में आयेजित होती है, उसके प्रत्येक सोपान में क्रमशः इंग्लिश कंप्रीहेंशन, इंग्लिश लैंग्वेज एण्ड कंप्रीहेंशन तथा डेस्क्रिप्टिव पेपर इन इंग्लिश और हिंदी है। प्रश्न यह है कि जब आरंभिक दो सोपानों में इंग्लिश लैंग्वेज एण्ड कंप्रीहेंशन अनिवार्य है तो तीसरे सोपान में भला हिंदी का विकल्प कोई क्यों और कैसे चुन सकता है? जाहिर है यहाँ हिंदी का उल्लेख केवल नाम के लिए है।

कंबाईंड हायर सेकेंडरी लेबल की परीक्षा में इंग्लिश लैंग्वेज का प्रश्नपत्र है किन्तु हिंदी का कुछ भी नहीं है। स्टेनोग्राफर्स (ग्रेड 'सी' एण्ड 'डी') के लिए 200 अंकों की परीक्षा में इंग्लिश लैंग्वेज एण्ड कंप्रीहेंशन 100 अंकों का है किन्तु हिंदी को पूरी तरह हटा लिया गया है। जूनियर इंजीनियर्स की परीक्षा में हिंदी का नामोनिशान नहीं है। सब इंस्पेक्टर्स (दिल्ली पुलिस, सी.आर.पी.एफ तथा सीआईएसएफ) की परीक्षा दो भाग में होती है। इसके पहले भाग में 50 अंकों का इंग्लिश कंप्रीहेंशन तो है ही, दूसरे भाग में भी 200 अंकों का सिर्फ इंग्लिश लैंग्वेज एण्ड कंप्रीहेंशन है। विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में मल्टी टास्किंग (नान टेक्निकल) स्टाफ के लिए भी दो भागों में बंटी परीक्षा के पहले भाग में जनरल इंग्लिश है और दूसरे भाग में शार्ट एस्से एण्ड इंग्लिश लेटर राइटिंग है। आएका ने मान लिया है कि हिंदी में कुछ भी लिखने की कभी जरूरत नहीं पड़ेगी। इसीलिए हिंदी के किसी स्तर के ज्ञान की परीक्षा का कोई प्रावधान नहीं है। यह सब देखने के बाद कहाँ जा सकता है कि देश की अराजपत्रित सरकारी नौकरियों के लिए अब हर स्तर पर सिर्फ अंग्रेजी को स्थापित कर दिया गया है और हिंदी को पूरी तरह बाहर का रास्ता दिखा दिया गया है।

राजपत्रित अधिकारियों के चयन के लिए संघ लोक सेवा आयोग तथा विभिन्न राज्यों के लोक सेवा आयोग हैं। संघ लोक सेवा आयोग का गठन अंग्रेजों ने 1926 में किया था। अंग्रेजों के जमाने में यहाँ परीक्षाओं का माध्यम सिर्फ अंग्रेजी थी। आजादी के बाद 1950 में इस परीक्षा के लिए सिर्फ तीन हजार प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया था और 1970 में यह संख्या बढ़कर ग्यारह हजार हुई थी। 1979 में कोठारी समिति के सुझाव लागू हुए जिसने संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल सभी भाषाओं में परीक्षा देने की संस्तुति की थी। इससे देश के दूर दराज के गाँवों में दबी प्रतिभाओं को भी अपनी भाषा में परीक्षा देने के अवसर उपलब्ध हुए। परिणाम यह हुआ कि 1979 में परीक्षा देने वालों की संख्या एकाएक बढ़कर एक लाख दस हजार हो गई। अब हर साल गाँवों के गरीबों के बच्चों की भी एकाध तरवीरें अखबारों में अवश्य देखने को मिल जाती थीं जिनका चयन इस प्रतिष्ठित सेवा में हो जाता था। शीर्ष पर बैठे हमारे नीति नियामकों को यह बर्दाश्त नहीं हुआ। उन्होंने 2011 में वैकल्पिक विषय को हटाकर उसकी जगह 200 अंकों का सीसैट (सिविल सर्विस एप्टीट्यूट टेस्ट) लागू किया जिसमें मुख्य जोर अंग्रेजी पर था। इससे हिंदी माध्यम वाले परीक्षार्थियों की संख्या तेजी से घटी। इसका राष्ट्रव्यापी विरोध हुआ। दिल्ली हाईकोर्ट ने भी आन्दोलनकारियों के पक्ष में अपेक्षित निर्देश दिए, तब जाकर 2014 में आयोग ने कुछ बदलाव किए। किन्तु इसके बाद धीरे-धीरे आयोग ने सीसैट सहित यूपीएससी परीक्षा के नियमों में दूसरे अनेक ऐसे परिवर्तन किए जिससे हिंदी माध्यम के अभ्यर्थियों के लिए प्रारंभिक परीक्षा पास करना भी कठिन होता गया। 2009 में हिंदी माध्यम से जहाँ 25.4 प्रतिशत परीक्षार्थी सफल हुए थे वहाँ 2019 में यह संख्या घटकर

मात्र 3 प्रतिशत रह गई। पहले जहाँ टॉप टेन सफल अभ्यर्थियों में तीन-चार हिंदी माध्यम वाले अवश्य रहते थे वहाँ 2019 में चयनित कुल 829 अभ्यर्थियों में हिंदी माध्यम वाले चयनित अभ्यर्थियों में पहले अभ्यर्थी का स्थान 317वाँ है।

तीन स्तरों पर होने वाली संघ लोक सेवा आयोग की इस सर्वाधिक प्रतिष्ठित परीक्षा में हिंदी माध्यम वालों को अमूमन प्रारंभिक परीक्षा में ही छोट दिया जाता है। मुख्य परीक्षा की तैयारी के लिए भी न तो उन्हें स्तरीय पाठ्य-सामग्री सुलभ है और न बेहतर कोचिंग की सुविधा क्योंकि आर्थिक दृष्टि से भी वे कमजोर होते हैं। ग्रामीण पृष्ठभूमि के ऐसे अभ्यर्थी ज्यादातर मानविकी के विषय चुनते हैं। तकनीकी विषय चुनने वाले अभ्यर्थियों की तुलना में स्वाभाविक रूप से उन्हें कम अंक मिलते हैं। साक्षात्कार में भी हिंदी माध्यम वालों के साथ भेदभाव किया जाता है। प्रश्नों के हिंदी अनुवाद देखकर तो कोई भी सिर पीट लेगा। कुछ बानगी आप भी देखिए -

‘भारत में संविधान के संदर्भ में, सामान्य विधियों में अंतर्विष्ट प्रतिषेध अथवा निर्बंधन अथवा उपबंध अनुच्छेद-142 के अधीन सांविधानिक शक्तियों पर प्रतिरोध अथवा निर्बंधन की तरह कार्य नहीं कर सकते।’ एक दूसरा वाक्य है, “वार्महोल से होते हुए अंतरा-मंदाकिनीय अंतरिक्ष यात्रा की संभावना की पुष्टि हुई।” (डॉ. विजय अग्रवाल द्वारा उद्धृत)

प्रश्न निर्माताओं ने सर्जिकल स्ट्राइक के लिए ‘शल्यक प्रहार’, डिजिटलीकरण के लिए ‘अंकीयकृत’, साइंटिस्ट आब्जर्ब्ड के लिए ‘वैज्ञानिकों ने प्रेक्षण किया’, स्टील प्लांट के लिए ‘इस्पात का पौधा’, डेलिवरी के लिए ‘परिदान’, सिविल डिसऑर्बिडिएंस मूवमेंट के लिए ‘असहयोग आन्दोलन’ आदि किया है। इनमें डेलिवरी के लिए ‘वितरण’ तथा डिसऑर्बिडिएंस मूवमेंट के

लिए 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' तो बेहद प्रचलित शब्द हैं। इन्हें भी गलत लिखना प्रमाणित करता है कि हिंदी अनुवाद को गंभीरता से नहीं लिया जाता।

अमूमन सहज ही कह दिया जाता है कि जिन्हें हिंदी अनुवाद समझ में नहीं आता है उनके लिए मूल अंग्रेजी तो रहता ही है। किन्तु यहाँ समझने की बात यह है कि यूपीएससी की प्रारंभिक परीक्षा में छह से सात लाख परीक्षार्थी शामिल होते हैं और उनमें से लगभग तेरह प्रतिशत परीक्षार्थी ही मुख्य परीक्षा के लिए अपनी अर्हता प्रमाणित कर पाते हैं। ऐसी दशा में 0.01 प्रतिशत अंक का भी महत्व होता है। परीक्षार्थियों को निर्धारित समय सीमा के भीतर ही लिखना होता है। ऐसी दशा में हिंदी माध्यम का परीक्षार्थी यदि प्रश्न को समझने के लिए अंग्रेजी मूल भी देखने लगा तो उसका पिछड़ना तय है।

प्रश्न यह है कि देश के लोक सेवकों को कितनी अंग्रेजी चाहिए? उन्हें इस देश के लोक से संपर्क करने के लिए हिंदी सीखनी जरूरी है या अंग्रेजी? उन्हें जनता के सामने अंग्रेजी झाड़कर उनपर रोब जमाना है या उन्हें समझाना-बुझाना? उनके साक्षात्कार अंग्रेजी माध्यम से क्यों लिए जाते हैं? क्या उन्हें इंग्लैंड में सेवा देनी है? इस देश के सबसे बड़े पद तो राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के हैं। इन पदों पर बैठे लोगों का काम तो हिंदी और गुजराती बोलने से चल जाता है। ऐसे लोक सेवकों को लोक सेवा का अधिकार क्यों मिलना चाहिए जो लोक की भाषा में बोल पाने में भी अक्षम हों? हिंदी माध्यम के अपने बैच के टॉपर निशांत जैन ने अपना अनुभव बाँटते हुए कहाँ है कि हिंदी माध्यम वाले आईएएस अधिकारी अंग्रेजी माध्यम वालों की तुलना में जनता के प्रति अधिक संवेदनशील देखे गए हैं।

न्याय के क्षेत्र की दशा यह है कि आज

हमारे देश में सुप्रीम कोर्ट से लेकर 25 में से 21 हाईकोर्टों में हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा का प्रयोग नहीं होता है। मुवक्किल को पता ही नहीं होता कि वकील और जज उसके केस के बारे में क्या सवाल-जवाब कर रहे हैं। उसे अपने बारे में मिले फैसले को समझने के लिए भी वकील के पास जाना पड़ता है और उसके लिए भी उसे पैसे देने पड़ते हैं।

सरकारी नौकरियों, प्रशासन और न्याय व्यवस्था में अंग्रेजी के वर्चस्व के लिए क्या जनता जिम्मेदार है या सरकार और उसकी नीतियाँ? आज शिक्षा को व्यापार और मुनाफे के लिए ज्यादातर निजी क्षेत्र के हवाले कर दिया गया है। देश की अधिकांश राज्य सरकारों ने सरकारी विद्यालयों को भी अंग्रेजी माध्यम में बदल दिया है और हमारे नौनिहालों से उनकी मातृभाषाएँ क्रूरतापूर्वक छीन ली हैं। केंद्रीय विद्यालयों और नवोदय विद्यालयों में भी ऐसी व्यवस्था कर दी गई है कि आठवीं-नवीं के बाद ही बच्चों की हिंदी छूट जाती है। उनके तर्क हैं कि अभिभावकों की यही माँग है। प्रश्न यह है कि जब अफसर से लेकर चपरासी तक की सभी नौकरियाँ अंग्रेजी के बलपर ही मिलेंगी तो कोई अपने बच्चे को हिंदी पढ़ाने की भूल कैसे करेगा? निस्संदेह हिंदी पढ़ने से नौकरी मिलने लगे तो लोग हिंदी पढ़ाएंगे। यूपी बोर्ड में आठ लाख बच्चों के फेल होने की खबर तो सुर्खियों में थी और सारा दोष शिक्षकों पर डाला जा रहा था किन्तु इस ओर ध्यान नहीं था कि अंग्रेजी की शब्दावली और व्याकरण रटने में ही जब बच्चों का सारा समय चला जाएगा तो अपने घर की भाषा हिंदी पढ़ने के लिए वे कैसे समय निकाल पाएंगे?

इस देश में तकनीकी, मेडिकल, मैनेजमेंट, कानून आदि की शिक्षा तो अंग्रेजी माध्यम से होती ही है। राजधानी के विश्वविद्यालयों में

मानविकी और सामाजिक विज्ञान की शिक्षा भी अंग्रेजी माध्यम से होने लगी है जबकि पढ़ाने वाले अध्यापक ज्यादातर हिंदी पढ़ी के ही हैं। इन सबके पीछे अंग्रेजी का दिनोदिन बढ़ता रूतबा है जिसके लिए सिर्फ सरकारें जिम्मेदार हैं।

हाल ही में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द इंग्लिश मीडियम मिथ' में संक्रान्त सानु ने प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर दुनिया के सबसे अमीर और सबसे गरीब, बीस-बीस देशों की सूची दी है। बीस सबसे अमीर देशों में उन देशों की जनभाषा ही सरकारी कामकाज की भी भाषा है और शिक्षा के माध्यम की भी। इसी तरह दुनिया के सबसे गरीब बीस देशों में सिर्फ एक देश नेपाल है जहाँ जनभाषा, शिक्षा के माध्यम की भाषा और सरकारी कामकाज की भाषा एक ही है नेपाली। बाकी उन्नीस देशों में राजकाज की भाषा और शिक्षा के माध्यम की भाषा भारत की तरह जनता की भाषा से भिन्न कोई न कोई विदेशी भाषा है। (द्रष्टव्य, द इंग्लिश मीडियम मिथ, पृष्ठ-12-13) इस उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम हमारे देश के विकास में कितनी बड़ी बाधा है।

वास्तव में व्यक्ति चाहे जितनी भी भाषाएँ सीख ले किन्तु वह सोचता अपनी भाषा में ही है। हमारे बच्चे दूसरे की भाषा में पढ़ते हैं फिर उसे अपनी भाषा में सोचने के लिए अनूदित करते हैं और लिखने के लिए फिर उन्हें दूसरे की भाषा में

ट्रांसलेट करना पड़ता है। इस तरह हमारे बच्चों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा दूसरे की भाषा सीखने में चला जाता है। इसीलिए मौलिक चिन्तन नहीं हो पाता। मौलिक चिन्तन सिर्फ अपनी भाषा में ही हो सकता है। पराई भाषा में हम सिर्फ नकलची पैदा कर सकते हैं। अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा सिर्फ नकलची पैदा कर रही है।

हमें स्मरण रखना चाहिए कि हम अपने जिस अतीत पर मुग्ध हैं उस अतीत की सारी उपलब्धियाँ अपनी भाषाओं में अध्ययन करने का परिणाम थीं।

आज भी इस देश की सत्तर प्रतिशत जनता गावों में ही रहती है। उनकी शिक्षा ग्रामीण परिवेश की शिक्षण संस्थाओं में ही होती है। गाँवों की इन प्रतिभाओं को यदि मुख्य धारा में लाना है तो उन्हें उनकी अपनी भाषाओं में शिक्षा देना एकमात्र रास्ता है और यही हमारे संविधान का भी संकल्प है। हमारा संविधान, देश के प्रत्येक नागरिक को 'अवसर की समानता' का अधिकार देता है।

अंत में मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि अंग्रेजी इस देश में सिर्फ एक विषय के रूप में पढ़ाई जानी चाहिए। माध्यम के रूप हर्गिज नहीं और किसी भी स्तर पर नहीं। इसके साथ ही सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी की जगह हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को वरीयता मिलनी चाहिए।

(लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर और हिंदी विभागाध्यक्ष थे।)

उत्तर संरचनावाद का भाषिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. ऋषिकेश राय

इक्कीसवीं सदी का आरम्भ संस्कृति के एक नए प्रतिमानीकरण से परिभाषित किया जा सकता है। तकनीक के विकास में हुए पैराडाइम परिवर्तनों ने आधुनिककालीन राष्ट्र राज्य की संस्था के समक्ष अस्तित्व की नई चुनौती प्रस्तुत की है। अब उसके शक्ति के स्रोत भौगोलिक सीमा, संसाधन, ऐतिहासिक गौरव आदि न होकर सूचना तंत्र संचालित बाजार व्यवस्था है। यही उसके महत्व और पहलकदमी की क्षमता के निर्णायक तत्व बन चुके हैं। रेमंड विलियम्स ने कहा था कि हम वस्तुओं का उपयोग नहीं, वरन उपभोग करने लगे हैं। इस उपभोक्तावादी दृष्टि ने बाजार के वैश्विक प्रसार एवं व्याप्ति में उत्प्रेरक का काम किया है। उत्तर आधुनिक सांस्कृतिक तर्क और नवसाम्राज्यवादी आर्थिक-सामाजिक दशाओं से संरक्षित उपभोक्ता दृष्टि वैश्वीकरण की चेतना से आक्रांत है। उसके लिए मूल्य व्यवस्था और संस्कृति संकुल भी प्रबन्धन और नियंत्रण के विषय हैं। इन परिस्थितियों ने मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों और उनके प्रतिफलन की नियामक-निर्णायक परिणतियों की अभिस्वीकृति को भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के इस उत्तर आधुनिक तर्क ने मनुष्य की कलात्मक साधना, सिद्धांत, विचारणा और उनकी प्रभावोत्पादकता को पुनर्परिभाषित करना शुरू कर दिया है। साहित्य की विधाओं की संरचना के समक्ष कई प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, जिनकी निष्पत्ति नए संदर्भों में करना आवश्यक है।

रचना के अन्तरसौंदर्य को उदघाटित करने की प्रविधि में परिवर्तन का श्रेय आधुनिक भावबोध को है। यह औद्योगीकरण के फलस्वरूप पैदा हुई आधुनिकता का परिणाम था। इस आधुनिक संचेतना ने मानवीय सौंदर्यचेतना को परम्परा से विलग एक अभिनव दृष्टिकोण प्रदान किया। यह दृष्टिकोण इस आधार पर खड़ा था कि प्रत्येक रचना एक आंतरिक संरचना अथवा पूर्वकल्पित विन्यास की अभिव्यक्ति है। यह सिद्धांत फर्डिनेन्ड डी सोस्यूर नामक एक स्विस् भाषावैज्ञानिक द्वारा प्रवर्तित किया गया था। भाषा को एक सुचिंतित संरचना माननेवाली इस विचारपद्धति को सामाजिक क्षेत्र में भी लागू किया गया। यह सिद्धांत मानता था कि भाषा की अपनी निश्चित विधियाँ हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य आभ्यंतर एवं बाह्य विश्व के बीच संपर्क स्थापन करता है। यथार्थ के साक्षात्कार का जरिया भी भाषा ही है। भाषा अपने अविकल संकेतग्रहों के द्वारा अर्थग्रहण की प्रक्रिया सम्पन्न कराती है। शब्दों का अपना कोई निजस्व अर्थ नहीं होता बल्कि आपसी अंतर से ही उनमें अर्थाधान घटित होता है। ध्यान से देखने पर संरचनावादी अभिगमों में सार्त्र प्रवर्तित अस्तित्ववादी चिंतन की प्रतिक्रियात्मक ध्वनि सुनाई पड़ती है। सामाजिक क्षेत्र में भी संरचनावाद वैयक्तिक स्वतंत्रता को विशेष महत्व नहीं देता, जबकि अस्तित्ववाद का प्रस्थान ही मनुष्य की सामाजिक मुक्ति पर आश्रित है। संरचनावादी विमर्शों में निर्णायक शक्ति के रूप में समाज को निर्दिष्ट किया गया है। इस वैचारिक सरणी के आधार पर निर्मित संरचनावादी फ्रांसीसी सम्प्रदाय का यह मानना था कि सम्पूर्णता कोई एकात्मिक निर्मित नहीं बल्कि अंगभूत अंशकों का संरचनात्मक संयोजन होती है। संरचनावादी विचारक समस्त संसार को भाषा की तार्किक व्युत्पत्ति के समरूप मानते हैं। संरचनावाद प्रत्येक अतार्किकता के अवतल में तर्क का प्रतिमान तलाशता है। संरचनावाद की वैचारिक समानांतरता

ऐतिहासिक रूप से प्राचीन भाषादार्शनिक भर्तृहरि के भाषिक चिंतन से स्थापित की जा सकती है। भर्तृहरि विश्व के समस्त पदार्थों एवं उनके ज्ञान को 'शब्दतः अनुविद्ध' कहते हैं। स्फटिवाद के रूप में प्रसिद्ध अपने सिद्धांत में वे शब्द के इस स्फोटक व्यापार को ही ज्ञान की प्राथमिक शर्त मानते हैं। दण्डी ने भी मनुष्य की लोकयात्रा को वाणी का प्रसाद स्वीकार किया है। भर्तृहरि ने यह प्रतिपादित किया है कि शब्दों से अर्थग्रहण की शक्ति हमारे भीतर सहज ज्ञान से स्थित होती है। ध्वनियों के नाद द्वारा अभिव्यक्ति अर्थ की अवस्थिति वाक्य में निहित होती है।

सोस्यूर ने भी इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि शब्दों में निहित संकेतों का सम्बन्ध वस्तुओं से नहीं होता। भाषा पूर्व धारणाओं का भंडार है, अतः उससे वाणी का निर्धारण नहीं होता। अशिक्षित जनों का कार्य-व्यापार भाषा नियमों से अनभिज्ञ होते हुए भी चलता रहता है। शब्द एक संकेत मात्र है उसका अपना कोई अर्थ नहीं होता। दूसरे शब्दों की तुलना से ही उसमें विशिष्ट अर्थाधान होता है। यह उसी प्रकार है जैसा कि संख्या सूचक शब्दों का अन्य समगोत्रीय शब्दों से पूर्वापर सम्बन्ध। सोस्यूर ने वाणी को भाषा में निहित एक विशिष्ट तर्क संरचना से सम्बोधित किया जो सेमिओटिक्स (संकेतविज्ञान) का विषय है।

संरचनावाद का सम्बन्ध आधुनिकता से था, जिसका अतिक्रमण कालक्रम से उत्तर आधुनिकता में हुआ। इस उत्तर चरण में संरचनावाद ने अपने को संशोधित कर उत्तर संरचनावाद का बाना धारण किया। इसके मूल में हुए भौतिक, आर्थिक और वैचारिक परिवर्तन थे जिनका असर वैश्विक धरातल पर अनुभूत किया गया। इसके अग्रणी प्रस्तुतकर्ता के रूप में जॉक देरिदा अपना विखंडनवादी सिद्धांत लेकर आए। इस सिद्धांत ने दुनियाभर के साहित्यकारों के सामने प्रयोजनीयता

और उद्देश्य की अर्थवत्ता का संकट खड़ा किया है। 1966 में दिए गए एक व्याख्यान में उन्होंने भाषा के क्षेत्र में उत्तर संरचनावादी विचार सरणियों का सूत्रपात किया। संरचनावादी अर्थ उत्पादन की धारणा को ध्वस्त करते हुए देरीदा ने यह प्रस्तावित किया कि अर्थ न तो कभी उत्पन्न होता है न हमें वह किसी भी हालत में ग्राह्य होता है। वस्तुतः जिसे प्रचलित अर्थों में अर्थरूप में स्वीकार किया जाता है वह मात्र एक संकेत होता है जो किसी दूसरे संकेत का स्थानापन्न होता है। अर्थ की तलाश अन्ततः एक व्यर्थ उपक्रम सिद्ध होती है क्योंकि इस प्रक्रिया में हम संकेतों की एक अंतहीन शृंखला ही निर्मित कर पाते हैं। हमारा वांछित अर्थ हमें छलता ही रहता है। देरीदा के अनुसार लेखन, वाचन और लेखन के बीच विरोध से उभरता है। पश्चिमी परम्पराओं में वाचन को प्राथमिकता दी गई है। अपने विखंडनवादी विसंरचनात्मक कौशल से वह लेखन के ऊपर आच्छादित वाचन के वर्चस्व और विशेषाधिकार को अप्राधिकृत करने का परामर्श देता है। ऐसा करके ही 'आद्य लेखन' (Arche-Ecriture) की अवस्था प्राप्त होती है। देरीदा के अतिरिक्त रोलांबार्थ, फूको, जॉन लॉक और जूलिया क्रिस्टी वा अन्य विचारक हैं जिन्होंने उत्तर संरचनावादी चिंतन में अपना योगदान किया है। उत्तर संरचनावादी चिंतन प्रणाली के अनुसार वाचन की अपेक्षा लेखन पर जोर देना, पाठक को दबावमुक्त करना है। देरीदा सभी सामाजिक संस्थाओं को लेखन का एक रूप मानते हैं और इन्हें विखंडित करने की वकालत करते हैं। शब्द का केंद्र उसके भीतर अथवा बाहर कहीं भी हो सकता है, जिसका विखंडन उसके अर्थ की संभाव्यपता को पाठक सापेक्ष बना देता है। अर्थ की पाठकीय सापेक्षता उसे एक विमर्श में परिणत कर देती है। ऐसे विमर्शों का अर्थ दूसरे विमर्शों

पर आधारित होता है, इस तरह विमर्शों की एक अंतहीन शृंखला कायम हो जाती है। यह अंतहीन शृंखला अर्थ के स्वेच्छाचारी माहौल का निर्माण करती है। इसका निहितार्थ है सभी प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों की निस्सामरता और अप्रयोजनीयता। उत्तर संरचनावाद के सामाजिक-सांस्कृतिक निहितार्थों को पश्चिम के आर्थिक-सांस्कृतिक उत्तर आधुनिक वैश्वीकरण के अभियान में खोजा जा सकता है। उत्तर आधुनिक चिंतन का केंद्रीय तत्व है वस्तु की क्षणभंगुरता और अस्थायित्व। की अनिश्चितता में विश्वास। यह अनिश्चयवादी दृष्टि आचरण की निरंकुशता और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के अस्वीकार को वैध ठहराती है। देरीदा का यह कहना है कि किसी भी शब्द का कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ पाठक के मनोगत तथा उसकी समझ के सापेक्ष होता है। किसी सुनिश्चित अर्थ के प्राप्त न होने के कारण विमर्शों का अम्बार लग जाता है, जिससे ज्ञान की केंद्रीयता टूट जाती है। इससे साहित्य एवं समीक्षा के क्षेत्र में अराजकता उत्पन्न होने का खतरा उपस्थित हो जाता है। वस्तुतः देरीदा मोण्टे के उस सिद्धांत से प्रेरित हैं जिसमें वे वस्तुओं के वास्तविक अर्थ की तलाश के बजाय प्राप्त अर्थों का निर्वचन कर उसका अर्थ निकालने की बात करते हैं।

उत्तर संरचनावाद अमूर्त दार्शनिक प्रत्ययों पर आधारित एक निगूढ़ एवं अधिभौतिक अवधारणा है। भाषिक संरचना के क्षेत्र में यह विखंडन के द्वारा पाठानुसंधान करता है। विखंडन की अवधारणा के विकास में देरीदा ने कई पारिभाषिक शब्दों का सहारा लिया है। देरीदा ने यह मत प्रकट किया कि दुनिया के चिंतकों ने साहित्य और संस्कृति में सहित्य, मंगल और सौंदर्य की अभिव्यक्ति की तलाश में निष्फल उपक्रम ही किया है जिससे मानवीय मेधा के सहज और

नैसर्गिक विकास को अवरूद्ध कर उसके प्रसार में बाधा उत्पन्न की है। मनुष्य जगत की स्वाभाविक वृत्तियों को दबाकर इसने काल्पनिक आदर्शवाद का एक कृत्रिम संसार रचा। सहज मानवीय चेतना की अबाध अभिव्यक्ति को दमित करने वाली इस आदर्शात्मक प्रवृत्ति को वे 'लोगोसेन्ट्रीज्म' के रूप में परिभाषित कर इसका प्रतिकार चाहते हैं। सत्य और सुंदर की तलाश भी अंततः एक पाठ है जिसने मनुष्य जीवन को अभीप्सित वस्तु के स्थान पर मिथ्या मृगतृष्णा से आक्रांत कर दिया है।

देरीदा की विद्वत प्रतिभा एवं विश्लेषकीय क्षमता का लोहा मानते हुए भी उसकी वैचारिक निष्पत्तियों की सामाजिक परिणतियों को स्वीकार कर पाना कठिन है। विखंडनवाद की व्याख्या में देरीदा 'ग्राफोसन्ट्रीज्म' (चित्रालेखवाद) शब्द का सहारा लेते हैं। उनके अनुसार हर शब्द उच्चरित होते ही एक श्रौतबिम्ब का निर्माण करता है, जो उसके द्वारा द्योतित मानसिक बिम्ब को संकेतित करता है। यह प्रक्रिया एक लेखन का रूप ले लेती है। श्रौतबिम्ब उच्चारण है जबकि उससे संकेतित वस्तु प्रत्यय। प्रत्यय का ज्ञान कराकर उच्चारण विलीन हो जाता है। लिखित शब्द श्रौतबिम्ब की अदृश्यता को दृश्य की संरचना में परिवर्तित कर देता है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए वे दो पारिभाषिक शब्दों भिन्नता (Difference) और चिह्न (Trace) का उपयोग करते हैं जो साहित्यिक रचना सम्बद्ध हैं। भिन्नता का अर्थ है, अन्यता। अपनी एक अन्य क्रियात्मक भूमिका में यह विलम्बन या स्थगन को द्योतित करता है। विलम्बन का तात्पर्य है, पाठ में मौजूद न होना। भिन्नता दिक् में जबकि विलम्बन काल में स्थित होती है। कविता के अर्थविधान में इनकी संगति को समझना आवश्यक है। यही अर्थान्वेषण काव्यालोचन का आधारिक तत्व है। उत्तर

संरचनावादी विखंडनात्मक चिंतन शब्द संकेतक को नश्वर मानकर उसमें मूल्यविहीनता का आधान करता है। वह चिह्न की अर्थवत्ता संदर्भ में ढूँढ़ता है। इस तलाश का कार्य आद्यलेखन (Arch writitng) से संभव होता है, जो अपने से जुड़े चिह्नों के द्वारा अनुपस्थित अर्थ का अनुसंधान करता है। ये चिह्न चित्रालेख में अर्थ का आधान संभव बनाते हैं। पाठक अथवा आलोचक की चेतना इसी से सक्रियता पाती है। किंतु इस सक्रियता की कोई दिशाबोधक अन्विति नहीं होती। दिशाबोधक सार्थकता की अनुपस्थिति ही आद्य लेखन की अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिफलित होती है। 'आफ ग्रेमेटोलॉजी' पुस्तक में वे साहित्यिक रचना के संदर्भ में आलोचना कर्म की दिशा का निर्धारण करते हुए उसे खोए हुए अर्थ की तलाश की ओर प्रेरित करते हैं। इनकी सहायता से आलोचक विलुप्त वस्तु यानि आद्यलेखन (Arch writing) का संधान कर सकता है। वह साहित्य रचना के माध्यमों यानि भाषिक प्रयोग अथवा पद्धति शैली को शक्ति के रूप में महत्व देने का हिमायती नहीं है वह उस विलोपन में है, जिसको उपलब्ध करना है। इस तरह वह आलोचना का कोई विधायक प्रतिदर्श उपस्थित न कर प्रचलित सभी मानकों का विध्वंस जरूर कर देता है। इस तरह यह तेजस्वी सिद्धांत मूर्तिभंजक अराजकता में बदल जाता है। भाषा में निहित शब्द, वाक्यों, वाक्यांशों का कोई मान्य और निश्चित अर्थ नहीं रह जाता और हर रचना अनेक निर्वचनों या तात्पर्यों का एक अंतहीन खेल बन जाती है। कविता के पाठ पर इसे घटित करना उसके मान्य और स्वीकृत अर्थ के स्थान पर एक स्वर कल्पना से युक्त नैराज्य की सृष्टि करना है। विखंडनवादी सैद्धांतिक अतिरेक में यह काव्यार्थ के स्थापत्य का विध्वंस कर उसको अपनी सामाजिक एवं जातीय भूमिका से स्खलित रख

देता है। इस विखंडनवादी सिद्धांत का साम्य कुछ अंशों में बौद्ध दार्शनिक और 'माध्यमिक कारिका' के यशस्वी लेखक नागार्जुन के सिद्धांतों से की जा सकती है। नागार्जुन शून्यवाद का प्रवर्तन करते हुए कहते हैं कि सृष्टि का कोई भी तत्त्व वास्तविक या सत्य नहीं है। इस नश्वर जगत की प्रत्येक सत्ता 'चतुष्कोटिविनिर्मुक्त शून्यवादी' अस्तित्व में व्याप्त है। यहाँ तक कि तथागत बुद्ध भी शून्य हैं। अपने दार्शनिक ग्रंथ 'शारीरक भाष्य' में शंकराचार्य इसी शून्यवाद का विस्तार करते हुए इसे 'सर्ववैनाशिकत्वनवाद' की संज्ञा देते हैं। इसमें किसी नए सृजन की परिकल्पना नहीं है, बल्कि पूर्व निर्माणों को ढहाने की मूर्तिभंजक अतिवादिता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर किसी भी ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला और साहित्य का उपयोगी महत्व नहीं रह जाता। लोकमंगल और सामाजिक सचेतनता के आह्वायक की दृष्टि से साहित्य की उपादेयता संदेह के घेरे में आ जाती है। साहित्य और उसकी प्राथमिकता भावसम्पन्न विधा कविता की मूल्यवत्ता। बिन्दु मात्र भी नहीं रहती।

इसके विपरीत मिशेल फूको आधुनिकता का स्थापत्यपरक अनुवांशिक विश्लेषण करते हैं जो मानवीय सांस्कृतिक कल्पनाशीलता की अधुनातन समीक्षा है। यह समीक्षा इस दुनिया में ज्ञानार्जन की प्रतिक्रियाओं के विषय में न केवल कारणों को पेश करती है, बल्कि उसके निश्चित परिणामों को भी सामने लाती है। इनमें कल्पित आधुनिकता की अपेक्षा जिजीविषा की माँग अधिक होती है। अपनी इसी तर्क के कारण फूको अपने उत्तर संरचनावादी संस्करण में शब्दों का अर्थ तलाशने की जगह उनकी विमर्शात्मक स्थिति पर जोर देते हैं। इसे वे मानवीय मस्तिष्क की केंद्रीयता से सम्बद्ध करते हैं। उनका मानना है कि किसी सिद्धांत को स्वीकृति प्राप्त करने के लिए राजनीतिक और बौद्धिक सत्ता केंद्रों से

सामंजस्य और संगति स्थापित करनी होती है। फूको के वैचारिक प्रस्थानों में मार्क्स और नीत्शे के विचारों का प्रभाव है पर अपनी स्थापनाओं में वे मौलिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। ज्ञान अथवा पद्धति के मामले में उसमें कई महत्वपूर्ण बिंदु हैं।

इसकी तुलना में देरिदा का सिद्धांत उत्तर आधुनिक 'इच्छा' को 'विवेक' के स्थान पर नाभिकेंद्र के रूप में स्थापित करता है। यह सामाजिक दायित्वशीलता के स्थान पर मूल्यहीन, तर्कहीन और समाज निरपेक्ष व्यक्तिवादी निरंकुशता की पैरवी करता है। यह साहित्य के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को ध्वस्त कर उपभोग मूल्य को ही वरीयता देता है। उसकी तर्कहीनता और प्रयोजनहीनता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का तर्क बन जाती है। यह केंद्र पर प्रहार करती है और साकल्य को नकारती है। सामाजिक-राजनीतिक संरचना में युग्म पदों में पहले से अधिमानता प्राप्त पूर्व पदों की क्रमिकता को विपर्यस्त कर देती है।

कविता साहित्य की सर्वाधिक संघनित और गैर व्यावसायिक विधा है जो परम्परा, संस्कार, सामाजिक उपादेयता और सौंदर्य से सम्बद्ध होती है। पूर्व आधुनिक समाजों में वह मनुष्य के नैतिक संकल्पना की जीवंत अभिव्यक्ति बन जाती है।

आधुनिकता में वह राष्ट्रीय-जातीय जागरण और सामाजिक एकीकरण का साधन बनने के अतिरिक्त मानवीय विवेक की पक्षधरता और उसकी सौंदर्य चेतना की प्रतिनिधि बनती है। मानव मुक्ति के अधिवृत्तांतों में उसकी प्रेरक भूमिका रही है। परंतु उत्तर संरचनावादी विखंडन ने उसे महज एक पाठ में अवमूल्यित कर दिया है जिसकी सौन्दर्यशास्त्रीय और सामाजिक उपयोगिता का कोई मूल्य नहीं। उसकी सृजनात्मकता और विधायक क्षमता को अस्वीकार कर उसे एक उपभोग्य वस्तु में परिवर्तित करने का उपक्रम अंततः उसे लोकहितकारी भूमिका से विपथित करने का ही उपक्रम है। विश्व की सभ्यता और संस्कृति का नियामक लोक है, उसके विरुद्ध खड़ा होनेवाला कोई भी सिद्धांत चाहे कितना ही विलक्षण और नवोन्मेकषकारी क्यों न हो, स्वीकार्य नहीं हो सकता। कविता का महत्व सामाजिक नियमन और रूपांतरण में गुरुतर है। मनमाने अर्थों और भाषा के खेल में उलझाकर उसके तात्पर्य व पाठ को वाष्पीकृत करने का प्रयत्न वैश्विक आर्थिक-सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापन का ही उद्यम और अभियान है, इसमें शुबहे की गुंजाइश नहीं है।

संपर्क : ऋषिकेश राय - उपनिदेशक, राजभाषा, टी-बोर्ड, 14, ब्रेबोर्न रोड, कोलकाता-700001.
मो. : 9903700542

अज्ञेय का जीवन-बोध और शोध

हेमन्त गुप्ता

अज्ञेय जीवन के आस्थावान मूल्यधर्मी चिंतक ही नहीं, वरन वे उसकी स्तुति-गायक कलाकार भी हैं। उन्होंने अपने कलाकर्म के बारे में ठीक ही लिखा है -

मैं मृत्यु का गीत नहीं गाता।

पर मृत्यु है, इसलिए गाता हूँ।

इसलिए गीत स्तवन हो जाता है - जीवन का।

जीवन क्या है? मुख्यतः यह प्रश्न दर्शन-क्षेत्र का है, किंतु अज्ञेय ने इसका उत्तर मूलतः अनुभूति के धरातल पर खोजा है। यों तो अज्ञेय दर्शन के ज्ञाता और विज्ञान के छात्र रहे हैं, पर वे प्रकृति से साहित्यकार हैं। इसलिए उनकी दृष्टि एक मनीषी, साहित्यकार, एक साहित्यिक मनीषी, एक कलाधर्मी की दृष्टि है और उसका मूल ऊर्जा स्रोत अनुभूति है। वे स्वयं को दार्शनिक मानते भी नहीं हैं। मैं दार्शनिक बना, ऐसा मैं नहीं जानता। अपने को दार्शनिक मानता भी नहीं हूँ। जीवन के प्रति सतत जिज्ञासा मुझमें है और चीजों को समझने की कोशिश करता रहता हूँ-समझने के लिए उनके बारे में सोचाता भी हूँ। यदि इसी को आप दार्शनिक होना कहे तो दूसरी बात है। चूँकि उनके संपूर्ण जीवन-चिंतन का केंद्र मानव है, इसलिए जीवन की व्याख्या भी अज्ञेय मानव को मूलसत्ता मानकर करते हैं। अज्ञेय जीवन के साक्षात्कार के लिए न तो किसी पारलौकिक स्रोत की खोज करते हैं और न उसे नितांत भूत-तत्त्वों से निष्पन्न मानकर किसी प्रयोगशाला की शरण लेते हैं। कहने का आशय यह है कि अज्ञेय ने जीवन और उससे संबंधित प्रश्नों पर मानव के संदर्भ में विचार किया है। मानव के संदर्भ में जीवन को लेकर उनकी दृष्टि मूल्यपरक है और मूल्यों को लेकर स्वातंत्र्यमानंदम् की जयघोषिका है। यानी उनके समग्र जीवन-चिंतन का केंद्र मानव और स्वाधीनता है।

जीवन के रूपार्थ का विश्लेषण करते हुए उनकी दृष्टि मानव-जीवन तक ही सीमित रही है। कारण यह है कि सही अर्थों में जीवन का अनुभव भी मानव ही करता है। अन्य प्राणिवर्ग नहीं। अतः मानवेतर या मानवापर जीवन उनके विवेचन का विषय नहीं रहा है। जीवन क्या है? पूछने का आशय यही है कि मानव को लेकर सोचना और कहना है, और यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है जिसका सीधा सर्वमान्य उत्तर नहीं हो सकता, किंतु साथ ही ऐसा सनातन बीज प्रश्न, जिसका समाधान पाकर ही मानव की बुद्धि अन्य प्रश्नों का समाधान कर पाने में समर्थ हो पाती है।

अज्ञेय ने अपनी सत्यान्वेषिणी दृष्टि से जो उत्तर पाया है, जीवन को जिस रूप में देखा है, वह सर्वमान्य हो या न हो, हम उनसे चाहे असहमत या भिन्नमत हों, किंतु उसे एकदम नकार नहीं सकते। यों तो सामान्य अर्थ में अज्ञेय मानते हैं कि जीवन होने की एक दशा का नाम है। किंतु यह होना एक विशिष्ट अर्थ रखता है- जीवन वास्तव में निरी एक होने की क्रिया या नैसर्गिक व्यापारों के अनुक्रम का नाम नहीं है, जीवन उनके होने के बोध का नाम है। यानी कुछ है नहीं, मैं हूँ का बोध ही वास्तव में जीवन है। जीवन के संदर्भ में मैं हूँ। यानी अस्ति का बोध ही प्राथमिक और सर्वोपरि है। अज्ञेय की दृष्टि में **अस्ति** पहले है **भवति** बाद में। अगर मैं अपने अस्तित्व के बारे में निःसंशय नहीं हूँ यानी अगर यह आस्था मुझमें नहीं है कि मैं हूँ और यह होना और यह मैं एक विविक्त,

अद्वितीय, स्वतंत्र आत्मचेतन और आत्मानुशासित मैं का होना है। एक केंद्रयुक्त सत्ता होना जिसकी परिधि है, केंद्र जिसका मैं है तो मैं किसी बात के संबंध में असंदिग्ध नहीं हो सकता। तब मैं अनिवार्यतया चिंता का शिकार हूँ और रहूँगा। आध्यात्मिक चिंता का, नैतिक चिन्ता का, धार्मिक चिंता का। सत्ता की पहचान में अच्छा या बुरा कुछ नहीं है। वह पाप-पुण्य से परे हैं। वह केवल अस्ति की, वास्तविकता की, रियलिटी की, रचना की पहचान है, जिसके अपने आप में अच्छे-बुरे होने का प्रश्न नहीं उठता, पर मूल्य संबंधी सब निर्धारणाएँ, निश्चयात्मकताएँ जिसके बाद आती हैं।

अज्ञेय जीवन के जिस स्वरूप की खोज मैं है, उसकी संश्लिष्ट अवधारणा को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

मैं हूँ यह पहचान ही अभय है। उसके बाद यह ज्ञान कि एक दिन किसी भी क्षण-यह सत्ता नहीं रहेगी, भय पैदा नहीं करता साहस देता है। न होने से घिरा हुआ **मैं हूँ**। न होने को दे दिया जाऊँगा, अपनी अवस्थिति की पहचान और स्वीकृति की सत्ता को खोखला नहीं करती, धृति के योग से अपने होने को और भी आस्वाद्य बनाती है। उसके स्वाद को सघनतर करती है। अवस्थिति को कर्म कहूँ? तो कितना सघन जीवन जीता है कर्मज्ञ, सघन साहसिक, तेजोमय सत-उसे पा सकता हूँ?

उसे पाना है तो जीवन से दूर भागकर या विमुख होकर उसे नहीं पाया जा सकता। कैसी भी विकट-विषम स्थिति क्यों न हो, अज्ञेय की दृष्टि में किसी भी स्तर पर जीवन के प्रति विराग का कोई स्थान नहीं है। जीवन को लेकर अज्ञेय न तो निराश होते हैं और न आक्रोशशील, न उदासीन और न पलायोन्मुख। उनकी दृष्टि जीवन के प्रति रागमयी है। उन्होंने जीवन को लेकर

किसी प्रकार के विराग को उदात्त मानकर महत्व नहीं दिया है। महत्व तो क्या उन्होंने जीवन-विराग या विरागी जीवन की कहीं चर्चा तक नहीं की है। जीवन में अनेक बार हमें ऐसा अनुभव होता है कि जीवन के सहारे टूट गए हैं और हम जीवन को ही टूटा हुआ मानकर उससे विमुख हो उठते हैं। ऐसी स्थिति में अज्ञेय की अटूट जीवन आस्था डगमगाती तक नहीं है - जीवन के सहारे टूट गए तो टुकड़े बीनने से कोई फायदा नहीं है। टुकड़े जोड़कर वे खम्भे नहीं बनते जिन पर जीवन टिकता है। सहारे टूट गए तो यह पहचानना ज्यादा जरूरी है। असल में जीवन उन पर टिका ही नहीं था, असल सहारे दूसरे हैं, जिन पर जीवन टिकता है, वे कहीं गहरे होते हैं और शायद गहरे में अदृश्य ही रहते हैं। तभी दिखते हैं, जब फालतू सब तोड़ताड़ कर हटा दिया जाता है।

यानी जो टूट गए, वे असल में सहारे नहीं थे और यह जो ढह गया दिखता है। यह भी असल में जीवन नहीं था-यह सब तो नकली रचना थी, जिसकी उपयोगिता तभी तक है, जब तक कि असल इमारत पुख्ता न हो जाए।

टूटना है, टूटने दो। गिरता है गिरने दो। फिर नीचे कहीं...असली खंभा वही है, जिसके सहारे खड़ा होना है। वह जब होगा तब दिखेगा, वह सहारा भी नहीं है, वही असल इमारत है।

इससे सिद्ध होता है कि जीवन के प्रति अज्ञेय का राग दृष्टि राग मोह का पर्याय नहीं है। अज्ञेय कहते हैं कि "मेरे निकट जीवन के प्रति यह प्रेम एक निस्संग विस्मय का ही भाव है।"

जब तक यह निस्संगता नहीं आती, तब तक हम नाना अनुभवों की माला पिरोने वाले जीवन की सही पहचान नहीं कर सकते। यह निस्संगता तभी आती है जब हम यह सोच लें,

स्वीकार कर लें कि किसी क्षण हठात जीवन चुक सकता है कि कभी भी यह समाप्त हो सकता है और उतनी ही संपूर्णता से यह भी अनुभव करें कि वह समाप्त नहीं हुआ है, चल रहा है - यानी विस्मय में डूब जावें, मेरे निकट जीवनानंद का यही नुस्खा है।

यह निस्संगता एक प्रकार का आत्मानुशासन ही है। आत्मानुशासन यानी भक्ति के स्थिति से ऊपर उठकर देखना। और यह देख सकना अज्ञेय की दृष्टि में एक प्रकार का तप है। निश्चय ही जीवन के प्रति अज्ञेय की यह निजी रागदृष्टि एक ऐसा कारयित्री दृष्टि है, जो व्यक्ति को अनुभवक या बोधकर्ता की स्थिति से ऊपर उठाकर उसे जीवन-स्रष्टा के पद पर आसीन कर देती है, क्योंकि इतना अच्छा सचेतन जीवन रचना ही है। अज्ञेय आनंद को इष्ट मानते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि में व्यक्ति के आनंदस्वरूप का स्रष्टा है।

जीवन के प्रति ऐसी निस्संग रागदृष्टि का होना भयमुक्त होना है। जब तक भय है तब तक निस्संग रागदृष्टि का होना भयमुक्त होना है। जब तक भय है तब तक निस्संग नहीं हुआ का डर है तो जीवन का संपूर्ण और एकांत अनुभव नहीं हो सकता। कैसी डर, मृत्यु का डर, जीवन का डर, प्यार का डर, घृणा का डर, ईश्वर का भी डर। "अभीता नो स्याम" ही सबसे बड़ा आदर्श है। इसलिए अज्ञेय भय-मुक्ति को जीवन का चरम सुख, चरम उपलब्धि मानते हैं।

हम जानते हैं सामान्यतया मानव सबसे अधिक मृत्यु से भयभीत रहता है और आज के अपक्व अस्तित्ववादी मानव के लिए तो मृत्यु सब कुछ को निस्सार कर देने वाली अमोघ स्वरूपा है। ऐसा मानकर या जानकर वह सदा जीवन के रसार्थ से वंचित रहता है। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जीवों में मानव ही ऐसी

जीव है, जो पहले से जानता है कि मैं मरूंगा। जानता है और फिर भी भयत्रस्त है और यह भय उसके जीवन को ही मिथ्या किए दे रहा है। उसके लिए मृत्यु से साक्षात्कार के क्षण में ही उसे जीवन का अर्थ समझ में आता है, उसका जीवन मोह मृत्युभय की ही एक विकृत प्रतिक्रिया है। किंतु अज्ञेय जीवन का अर्थ इस विलोम प्रक्रिया में न पाकर जीवन उत्सर्ग से मुक्ति के क्षण में पाते हैं, पूरी बात यह है कि वास्तविकता का पूरा अर्थ और सच्चे रूप उस मुक्तावस्था में दिखता है, जो उत्सर्ग के, विदाई के क्षणों में मिलती है। जीवन का अर्थ भी इसलिए, मृत्यु के साक्षात्कार के क्षण में नहीं मुक्ति के ही क्षण में दिखता है - उस मुक्ति के जो जीवन के उत्सर्ग के क्षण में मिलती है। उसे मुक्ति का क्षण न कहकर मृत्यु के साक्षात्कार का क्षण कहना प्रक्रिया को समझने में भूल करना है।

अहर्निश निरवधि उत्सर्ग ही मुक्ति है, मुक्ति से सम्यक् दृष्टि मिलती है, सम्यक् दृष्टि से हम वास्तविकता का, सत्ता का अर्थ पहचानते हैं।

लगता है अज्ञेय जीवन-मूल्यों के लिए या मूल्यों को जीते हुए मरने की ओर संकेत कर रहे हैं। अज्ञेय की ही मूल्यवर्ती दृष्टि जब तक भिन्न कोण से देखती है, तो और भी एक गहरी सचाई का उद्घाटन होता है, बात जीवन और मृत्यु की नहीं जीने और मरने की करनी चाहिए, जो दोनों क्रियाएँ एक ही जीवन प्रक्रिया के अंग हैं। जीवन में आस्था को अनिवार्यतः जीना और मरना दोनों स्वीकार करना होगा। मरने को नकारना जीने को भी नकारना है।

अज्ञेय ने अपने कवि को संबोधित करते हुए लिखा है - "अगर मेरे लिए मृत्यु नहीं है तो फिर जीवन भी मेरे लिए नहीं है। मैं आज जीता हूँ यह भी उतनी ही सांयोगिक बात है, जितनी यह कि कल मैं मर जाऊँगा।

इसके साथ ही यह जान लेना भी आवश्यक है कि अज्ञेय की आस्था जन्मांतर सिद्धांत में नहीं है, मैं समझता हूँ कि यह बात पूरी तरह स्वीकार करनी चाहिए कि पुनर्जन्म नहीं है। यही जीवन अपनी अति है, अपने आप में संपूर्ण है, इसकी सार्थकता कुछ है, तो इसी में है। संपूर्ण सार्थकता-बल्कि संपूर्णता-इसी जीवन की, जन्म और मरण के बीच की परिधि में होना चाहिए और हो सकती है।

जीवन और जीवन प्रक्रिया की इस गहरी पहचान के बाद अज्ञेय को लगा कि जीने-मरने की चिन्ता छोड़कर किसी दूसरी चीज को अपना लक्ष्य, साध्य, शोध्य बनाना चाहिए और उनकी दृष्टि में वह दूसरी चीज केवल मूल्य हो सकती है। मूल्य की खोज मानव यह मानता है जीवन से बड़ा कोई मूल्य होता है-बल्कि मानव ही उसे

गढ़ता है वह जीवन से बड़ा होता है, तो मृत्यु से भी बड़ा होता है। वह मेरा शोध्य हो सकता है, वह मूल्य जो जीवन-मरण से बड़ा है, पर मानव ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के प्रति विस्मययुत राग, निस्संगता, अभय, आत्मानुशासन और आनन्द का विवेचन-विश्लेषण करनेवाली अज्ञेय की दृष्टि स्पष्ट रूप से मूल्य मार्गीदृष्टि हो जाती है। अज्ञेय के चिन्तन में ये सभी स्थितियाँ परस्पर इतनी गहरी जुड़ी हुई हैं कि इन्हें पृथक-पृथक रूप में नहीं जाना समझा जा सकता। कहीं ये एक-दूसरे की कारण, कहीं कार्य, कहीं एक दूसरों की पूरक और कहीं परस्पर पर्याय जैसी प्रतीत होती है। यह स्थिति चिन्तन के अस्पष्ट या उलझे चिन्तन की नहीं, वरन संश्लिष्ट चिन्तन की द्योतक है।

संपर्क : ए-101, जयश्री विहार, थेगड़ा पुलिया के पास, कैथून रोड, कोटा (राज.) - 329003

लोक साहित्य में नाटक

खान मनजीत भावड़िया

मेरा आलेख लिखने का उद्देश्य समाज में फैली हुई बुराई को मिटाने का प्रयास करना है। हरियाणा में लोकनाट्य की बड़ी महत्ता है। जब आप नाटक शब्द सुनते हैं तो आप शायद अपने पसंदीदा नाटकीय टेलीविजन शो या फिल्म के बारे में जरूर सोचते हैं लेकिन लोक साहित्य में नाटक का गंभीर कथानक के साथ कम और मंच के प्रदर्शन के साथ बहुत कुछ है। लोक साहित्य में विभिन्न प्रकार नाटक के बारे में अधिक जानने के लिए पढ़ते रहे हैं। वे मंच पर क्या दिखाते हैं और हकीकत में क्या होते हैं। नाटक में सांग, रामलीला, यक्षगान, भवाई, तमाशा, जात्रा नौटंकी, ख्याल, कथकली, माच आदि नाटक के स्वरूप हैं। इनके अलावा नुक्कड़ नाटक, मंची नाटक आदि भी होते हैं। इसके अलावा लोक साहित्य आधारित नाटक पद्य व गद्य में भी होता है। जिसमें नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका आदि भी नाटक के रूप होते हैं। नाटक में कथावस्तु, पात्र, रस, अभिनय आदि महत्वपूर्ण होता है। लोक साहित्य में नाटक लिखित संवाद और मंच कार्यवाई के प्रदर्शन को दर्शाता है यह एक साहित्यिक शैली है। जो अभिनेताओं को एक लेखक के शब्दों को सीधे दर्शकों तक पहुँचाने की अनुमति देती है लेकिन एक से अधिक प्रकार की साहित्यिक शैली है और मौके हैं। आप सब नियम के उदाहरण देखे हैं। हास्य आमतौर पर हास्य नाटकों में होता है लेकिन हास्य को परिभाषित करने का एकमात्र तरीका मजा नहीं है। नाटक का अर्थ केवल और केवल नकल करना होता है। श्री रामनारायण अग्रवाल का मत है कि, स्वांग का एक नाट्यरूप उत्तरमध्यकाल में उत्तर तथा मध्य भारत में 'ख्याल' के नाम से विकसित हुआ था और उसी ने पंजाब में ख्याल, राजस्थान में तुरा कलगी, मालवे में माँच तथा ब्रज क्षेत्र में भगत और हरियाणा तथा मेरठ में सांग नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। श्री सुरेश अवस्थी के इन शब्दों में भी उक्त मत का समर्थन होता है कि 'ये नाटक कई नामों से प्रसिद्ध हैं, जैसे नौटंकी, संगीत, भगत, निहालदे और स्वांग। ये सभी नाम लगभग समानार्थी हैं स्वांग कदाचित् सर्वाधिक प्राचीन नाम है। श्री जगदीश चन्द्र माथुर इसका प्राचीनतम नाम संगीतक मानते हैं। उनकी दृढ़ धारणा है कि 'संगीतक' ही बाद में सांगीत और सांग बन गया। सांग किसी भी प्रदेश के लोक नाट्य वहाँ की संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनमें उस भू - भाग के मौलिक आदर्श एवं जीवनमूल्यों को अभिनय तूलिका द्वारा इंद्र - धनुषी रंगों में चित्रित किया जाता है। डॉ. नागेन्द्र ने लोकनाट्य की गरिमा को रेखांकित करते हुए लिखा है कि लोकनाट्य - साहित्य इतना विशाल और

महत्वपूर्ण है कि इसमें भारतीय संस्कृति का सहज रूप देखा जा सकता है। लोकनाट्यों में वे तत्व निहित हैं, जो समय-समय पर देशकाल के अनुरूप जीवन्त साहित्य प्रस्तुत करके लोकजीवन को रास - संपृक्त करते रहे। यदि सहानुभूति के साथ इस विशाल साहित्य का अनुशीलन किया जाए तो इस रंगमंच के झीने आवरण से आशा-आशंका, विजय-पराजय, आचार-व्यवहार, साहस-संघर्ष आदि की जीवित कहानी मुखरित हो उठेगी। लोकनाट्य सांग' हरियाणा की नाट्य-परम्परा का सिरमौर है, जिसे यहाँ की कौमी नाटक भी कहा जा सकता है। हरियाणा की जनरंजनकारी यह विधा वस्तुतः गीत-संगीत एवं नृत्य की मनमोहक त्रिवेणी है, जिसमें सर्वाधिक मजेदार है- इसके गीतों की गमक। गीत हरियाणवी सांगों का ताना-बाना सतरंगे गीतों के कला-तंतुओं से ही बुना जाता है। सांग में यह रागनी का जादू ही है, जो सिर चढ़कर बोलता है। एक हाथ कान पर रखकर और दूसरे को आकाश में उठाकर अभिनेता जब एक विशेष अंदाज में अपनी रागनी गाता है, तो समों बंध जाता है इन सांगों में लोकप्रिय कथानकों के आधार पर गीत के माध्यम से अभिनय द्वारा रस की ऐसी वर्षा की जाती है कि मुक्त - लहरियों में मंत्र-मुग्ध से हो जाते हैं। सावन की तरह बरसते संगीत की फुहारों में उनके मन - मोर नाच उठते हैं। सांगों में नृत्य अभिनय का प्रमुख माध्यम होता है। नृत्य के हाव-भाव से सांग के प्रदर्शन में निखार आता है। बिना बोले, कुछ निश्चित एवं परम्परागत संकेतों से ही बात दर्शकों को समझा दी जाती है। नृत्य की मुद्राएँ सांग के अभिनय को अधिकाधिक आकर्षक एवं संवेद्य बनाती है। नृत्य का ठुमका लगते ही सांग के दर्शकों लोकनाट्य एक हलचल सी मच जाती है। उनके हृदय आनंदातिरेक से उद्देलित हो उठते हैं। खुले मंच पर स्त्रीवेश में नाचने वाला

पात्र, जिधर ही एक तख्त के चारों कोनों में नाटक दिखाते हुए वातावरण की सृष्टि हो जाती है। रागनी की टेक पर पड़ने वाली मार्मिक तालों के अवसरों पर तो सांग के नर्तक अभिनेताओं की अदाएं और भी आकर्षक होती हैं। घूँघट के फटकारे एवं होठों पर जीभ फेरकर किये गए कुटिल कटाक्ष, दर्शकों के दिलों को छलनी-छलनी कर देते हैं। तख्त तोड़ रोमांचकारी नाच के समय अभिनेता अपनी अंग भंगिमाओं एवं पद-संचालन से दर्शकों को दीवाने बना देते हैं। उनकी गलबहियों की झूल और कूल्हों की मटकन तो भुलाए नहीं भूलती। यदि इन सांगों में प्रदर्शित नृत्यों की स्वाभाविकता एक ओर लोकजीवन की सादगी का संकेत देती है, तो दूसरी ओर पुरुष पात्रों द्वारा रबड़ की नकली छतियों को इस रूप से संचालित करना कि मन उफन-उफन पड़े, इस बात का परिचायक है कि हरियाणवी युवक दिलफेंक होते हैं। हरियाणा के सांगों में नौटंकी की भांति प्रायः नई उम्र के चंचल लड़के ही स्त्रीवेश में नारीपात्रों की भूमिका निभाते हैं। पर कभी-कभी ओढ़नी के झीने घूँघट में से चमचमाते चंचल एवं कजरारे नयनों की जगह कंटिली मूछों का दृश्य दिखाई दे जाता है। इससे सांग के प्रभाव में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। स्त्रियों का सा लालित्य न होने पर भी ये नर्तक - अभिनेता दर्शकों की रग दबाने में पूर्णतः सक्षम होते हैं। सांगों में हास्य रस की चुटौली चास भी रहती है और उसका आलम्बन होता है सांग का विदूषक, जिसे 'नकली' कहाँ जाता है। लोकरंजन का सर्वाधिक दयित्व इसी पात्र पर होता है। वह कभी राजा का मंत्री होता है, कभी रंगीले साहूकार का सहचर। नायक की विशेषताओं को प्रकट करने की अपेक्षा उसके द्वारा खलनायक और अन्य पात्रों की विकृतियाँ अच्छे ढंग से प्रस्तुत की जाती है। उसका कलाकौशल उसके वेश विन्यास

एवं उसकी तेज जबान में होता है, जिसमें हास्य-विनोद एवं सामयिक वाग्विदग्धता भरी होती है। दर्शकों की नाड़ी पहचान कर ऐन मौके पर वह ऐसे परिहास करता है कि हँसते-हँसते दर्शकों के पेट में बल पड़ जाते हैं। वह केवल अभिनेताओं से ही छेड़छाड़ करता वरन दर्शकों को ही परिहास का विषय बना लेता है। जब कोई दर्शक दुष्टतापूर्ण कोई बात कर देता है तो उससे निपटना भी उसे खूब आता है। गम्भीर से गम्भीर प्रसंग को हास्यमय बनाने को सामर्थ्य उसमें होता है। सांग या संगीत के प्राचीन स्वरूप एवं परम्परा की समस्याएं अभी तक विद्वानों के लिए जिज्ञासा एवं संसाधन का विषय बनी हुई हैं। लोकनाट्य का उपयोग अन्य लोक साहित्य उपादानों की भांति न केवल मनोरंजन करना है, वरन सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन पद्धति की शिक्षा देने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर प्रगति एवं परिवर्तन की प्रेरणा देना भी है। बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बहु-विवाह, रिश्वतखोरी, चोर-बाजारी, छुआछूत आदि बुराइयों के उन्मूलन के लिए हरियाणवी सांगों ने आम जनता को जागरूक करने का महत्वपूर्ण काम किया है। हरियाणवी नाटक के कई रूप प्रचलित हैं। नाटकों की कथाओं का मूल आधार पौराणिक, धार्मिक, नीतिपरक या प्रेमपरक होता है। प्रेम कथाओं में वियोग और संयोग शृंगारयुक्त अभिनय की प्रधानता होती है। इसमें उपदेशात्मकता के भी दर्शन होते हैं और सामाजिक बुराइयों की तीखी आलोचना की जाती है। इनमें अभिजात्य वर्ग पर व्यंग्य भी किए जाते हैं। लोकरुचि के अनुरूप ही इनकी कथाओं का चुनाव किया जाता है परंतु सांगी के लिए कोई बंधन नहीं होता। वह अपनी प्रतिभा के अनुसार कथानक का चुनाव पुराण से कर सकता है या वह चाहे तो प्रचलित

लोककथाओं में कल्पना के योग से एक नई कथा गढ़ सकता है। कई बार सांगी किसी काल्पनिक राजा का संबंध किसी राजघराने से जोड़ देता है और अपनी कल्पना के योग से उसे एक नई कथा बना देता है। हरियाणवी सांग में कथानक प्रायः ढीला-ढाला होता है। पूर्वार्द्ध में कथा धीरे-धीरे आगे बढ़ती है, उत्तरार्द्ध में इसकी गति अचानक इतनी तेज हो जाती है कि जैसे कथा को जबर्दस्ती कोई आगे धकेल रहा हो। हरियाणवी नाटक मंडलियों का प्रत्येक सदस्य प्रायः प्रत्येक पात्र का कार्य कर सकता है। इससे हरियाणा की प्राचीन संस्कृति, उसकी सामाजिक स्थिति और लोक में मौजूद परम्पराओं व विश्वासों का पता चलता है। 'सांग' व नाटक हरियाणवी संस्कृति का प्रतिबिंब है जिससे प्रदेश की प्राचीन संस्कृति से लेकर आधुनिक काल तक की संस्कृति का ज्ञान होता है। नाटकों ने हरियाणा के लोकजीवन पर अमिट छाप छोड़ी है। नाटकों की लोकप्रियता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि हरियाणा में कई स्कूल, मंदिर, कुएँ, धर्मशाला आदि का निर्माण सांगों व नाटकों के प्रदर्शन के दौरान इकट्ठा किए गए चंदे से हुआ है। सांस्कृतिक संपदा के स्वरूप को लोक-नाटक या लोक-नाट्य के बिना समझना संभव नहीं है। माँगलिक उत्सवों, पर्वों, तीज-त्योहारों या अन्य किन्हीं सामाजिक-सम्मेलन के अवसरों पर लोक-नाट्य की जरूरत महसूस हुई होगी, क्योंकि लोक-रुढ़ियों, लोक-परंपराओं, लोक-विश्वासों तथा लोक-भावनाओं के जितने विविध रूप लोक-नाट्य में मिलते हैं, इसके अलावा नाटक चाहे वह किसी भी रूप में खेला जाता हो वह केवल लोगों का मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाता है।

साहित्यिक विमर्श के कुछ नए सवाल सविता शर्मा

थर्ड जेंडर, जेंडर के भीतर एक पहचान है। यह पहचान ऐसे लोगों से जुड़ी है जो न स्त्री है और न पुरुष। थर्ड जेंडर एक तरह से न्यूट्रल है जो अन्य जेंडर के भीतर नहीं है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों की यौनिकता का समावेश है। यौनिकता का अर्थ यहाँ केवल यौन क्रिया और यौन संबंधों तक सीमित नहीं है यौनिकता से अभिप्राय प्रवृत्तियों और व्यवहारों से है। इस प्रकार यौनिकता का तात्पर्य यहाँ यौन क्रियाओं तक ही न सिमट कर देखना चाहिए बल्कि इसका अर्थ इससे कहीं व्यापक हमारी भावनात्मक विचारों या उससे भी बढ़कर हम कौन हैं, क्या है व समाज से हमारा रिश्ता क्या है से है यह न सिर्फ यौनिक पहचान से जुड़ी है बल्कि इसमें यौनिक मानदंड, व्यवहार, बर्ताव, चाहत, अनुभव, यौनिक ज्ञान और कल्पना भी शामिल होती है, जो विषमलिंगी व समलैंगिक संबंधों के अंतर्गत गढ़ी जाती है। आमतौर पर जेंडर से यह निर्धारित होता है कि हम अपनी यौनिकता को किस तरह व्यक्त करते हैं।

दरअसल यौनिकता का यही प्रश्न है जो एल.जी.बी.टी. समुदाय का भी मुख्य प्रश्न है। इस समुदाय की पूरी लड़ाई व संघर्ष - वह जो है और क्या होना चाहते हैं इसके बीच की ही लड़ाई है। एल.जी.बी.टी. समाज का संघर्ष यह है कि समाज उन्हें क्या मानता है और वह स्वयं क्या महसूस करते हैं इसके बीच का द्वंद्व है। समाज को यह समझने की जरूरत है कि कुछ लोग अपने शरीर के विपरीत भावनाएँ रखते हैं और इन लोगों की आत्मा अपने इस शारीरिक संरचना को अपनाने से पहले से ही संघर्षत है और समाज भी उनकी यह उलझन बढ़ाए जा रहा है बिना यह समझे कि वह समुदाय क्या चाहता है। प्रश्न यह है कि जिस प्रकार प्रत्येक नागरिक को स्वयं के लिए एक स्वतंत्र तथा अपने अनुसार जीवन यापन का अधिकार है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को क्यों नहीं? एल.जी.बी.टी. समुदाय की बड़ी विडम्बनाओं में से एक तो यह है कि इन्हें मनुष्य का दर्जा भी समाज में नहीं दिया जाता। इस पूरे समुदाय में भी सबसे निम्न स्थिति ट्रांसजेंडर (किन्नर) समुदाय की है, क्योंकि यह ऐसा वर्ग है, जिसको बचपन से ही उपेक्षा झेलनी पड़ती है और यह उपेक्षा उनके जीवन के अंत तक बरकरार रहती है, जबकि बाकी समुदाय के साथ ऐसा नहीं है।

गौरतलब है कि अपने जीवन की ही तरह साहित्य में भी ये समुदाय उपेक्षित ही रहा है। किंतु फिर भी कई ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने इस समुदाय को (किन्नर समुदाय को) अपनी लेखनी का आधार बनाया है। किन्नर समुदाय पर रचित ऐसे विभिन्न उपन्यास हैं- यमदीप, तीसरी ताली, किन्नर कथा, गुलाम मंडी, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा आदि।

यह सभी उपन्यास हिजड़ा समुदाय पर केंद्रित हैं और उनकी जैविक संरचना से लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचना के भिन्न-भिन्न पहलुओं को सामने लाने का प्रयास करते हैं। आज जब हम इस समाज को देखते हैं तो पहला सवाल उठता है कि ये ऐसे क्यों हैं? क्या ईश्वर ने इन्हें ऐसा बनाया है? या यह भी हमारे समाज की ही जेंडर आधारित निर्मिति का एक रूप है। जिस तरह समाज में स्त्री और पुरुष दो संरचनाएँ मौजूद हैं और उनके अनुरूप उनका व्यवहार, क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ हैं। ठीक उसी तरह समाज में इनके प्रति भी पूर्व धारणाएँ मौजूद हैं और यह सभी

धारणाएं सृजित हैं। क्योंकि इतिहास और पौराणिक आख्यानों में कहीं भी इन्हें अनुपयोगी नहीं माना गया है, जैसा कि समाज में होता है। सामाजिक धारणाओं और पौराणिक कथाओं से भिन्न साहित्य में इनकी एक अलग छवि गढ़ी गई है। इस छवि की पड़ताल अनेक संदर्भों के साथ करने की जरूरत है। साथ ही साहित्य की अंतरदृष्टि थर्ड जेंडर को कैसे देखती है यह समझना व देखना भी आवश्यक होगा।

इन उपन्यासों की कथावस्तु हिजड़ा समुदाय के मनुष्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है और समाज में उनकी निर्धारित भूमिकाओं की आलोचना करती है। जहाँ माना गया कि यह परिवार, समाज और राजनीति में उपयोगी भूमिका नहीं निभा सकता है। 'यमदीप' उपन्यास में लेखिका ने यह बखूबी दिखाया है कि किस प्रकार किन्नर समाज का जीवन उपयोगी है। लेखिका बताती हैं कि मुंबई में एक कंपनी में बकाया धन की वसूली के लिए इनकी नियुक्ति हुई और परिणाम यह हुआ है कि जिस ऋण की वसूली वर्षों से नहीं हो पा रही थी, उसे चुटकी बजाकर ये लोग वसूल कर लेते हैं। आर्थिक स्तर पर किन्नर समुदाय को मजबूत करने का पक्ष भी लेखिका उठाती है। 'यमदीप' उपन्यास की एक पात्र नाजबीबी का कहना है कि अगर सरकार हमें भी हथियार दे दे। मैं तो लड़ूंगी। लड़ते-लड़ते हिंदुस्तान के पीछे अपनी जान दे दूंगी। उपन्यास के अंत में नाजबीबी का यही संकल्प चुनाव में उनके खड़े होने की भूमिका तय करता है और वह कहती है जरूरत पड़ी तो भ्रष्ट लोगों के खिलाफ हथियार भी उठाऊंगी। हर गंदगी को जड़ से साफ कर दूंगी। दुनिया में शांति रहे, और क्या चाहिए किसी को? नाजबीबी का यह कथन शबनम मौसी, कमला जान, आशा देवी, कमला किन्नर और रायगढ़ की मेयर मधु

किन्नर की याद दिलाता है। जिसका कहना है कि वह ताली नहीं बजाना चाहती वह कुछ करना चाहती है। इसी तरह ट्रांसजेंडर एक्टिविस्ट लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ट्रांसजेंडर समुदाय के रोजगार के विकल्प में महिलाओं की सुरक्षा की जिम्मेदारी उन्हें देने और उससे संबंधित ट्रेनिंग की बात करती हैं। राजनीति यहाँ एक विकल्प के तौर पर इस समुदाय में उभर कर आती है।

उत्पादन और उपयोगिता की राजनीति का प्रश्न भी किन्नर समुदाय की समस्याओं से जुड़ा है। इन उपन्यासों में भी यह प्रश्न बार-बार उठाया गया है। 'तीसरी ताली' उपन्यास में प्रदीप सौरभ लिखते हैं कि घर में ऐसे बच्चे का पैदा होना उसकी पैदाइश के साथ ही उसकी उपयोगिता को खत्म कर देता है। 'घर में बेटा जरूर हुआ था, लेकिन कुछ दिनों के अंदर ही परिवार को पता चल गया कि वह किसी काम का नहीं है। बढ़ने के साथ उसका पुरुषांग विकसित नहीं हुआ। उपयोगिता का यह प्रश्न सामाजिक व राजनीतिक उपयोगिता को दर्शाता है।¹ जहाँ जैविक रूप से शरीर के किसी अंग का अविकसित होना विशेष तौर पर जननांगों, उसके पूरे व्यक्तित्व को ही प्रश्न के घेरे में ला देता है। इसी कारण 'किन्नर कथा' उपन्यास में राजशाही में पली बढ़ी सोना को चंदा के रूप में पाला जाता है। क्योंकि ऐसे बच्चों को समाज व परिवार के डर से माँ-बाप छोड़ देते हैं। समाज के साथ-साथ राज्य भी इनके प्रति अपने उत्तरदायित्व को नहीं स्वीकारता। यहाँ व्यक्ति की उपयोगिता को समाज उसके एक अविकसित अंग से ही क्यों सुनिश्चित करना चाहता है विचारणीय प्रश्न है?

यह समाज केवल जैविक असमानता को ही नहीं झेलता है वरन सामाजिक जेंडर आधारित असमानता का भी सामना करता है। समाज में स्त्री-पुरुष निर्धारित खाँचों से बाहर इनकी यौनिक

पहचान और अस्तित्व बार-बार इस असमानता को झेलने के लिए मजबूर होती है। हमारे समाज में जेंडर की समाजीकरण की प्रक्रिया के तहत स्त्री और पुरुष व्यवहार व स्वभाव को ही समाज में स्वीकृति दी जाती है। ऐसे में इस समुदाय का व्यवहार समाज में स्वतः ही अव्यवहारिक मान लिया जाता है, क्योंकि जेंडर निर्मिती में हमें इनके यौन व्यवहार की शिक्षा दी ही नहीं जाती बल्कि इनके यौन व्यवहार को कानूनी अपराध माना जाता है। ऐसे में इस प्रकार के बच्चों का प्राकृतिक यौन व्यवहार उन्हें स्वयं से नफरत और आत्महत्या को मजबूर करता है। 'तीसरी ताली' उपन्यास की निकीता की माँ सामाजिक मजबूरी के कारण अपनी बेटी को हिजड़ा समुदाय को सौंप देती है और निकीता परिवार से दूर अपनी इस नई परिस्थिति को समझने और खुद की पहचान व भविष्य के प्रति-आशंकित महसूस करती है। अपने को किसी से कम न समझने वाली निकीता के अंदर अपने आधे-अधूरे होने का हीन भाव घर करने लगा। उसके दिमाग की खिड़की अभी इतनी बड़ी नहीं थी कि वह ऐसे लोगों से प्रेरित हो पाती जो उसकी तरह है... उसे यह बात सबसे ज्यादा डराती कि थोड़े दिनों के बाद नीलम उसे चुनरी पहनाकर मुकम्मल हिजड़ा बना देगी।² वह इस समाज में खुद के अस्तित्व का आंकलन नहीं कर पाती है और आत्महत्या कर लेती है। समाज कभी इनकी जैविक भिन्नता को तो कभी यौनिक भिन्नता को मुख्य धारा से अलग होने का कारण मानता है। सवाल उठता है कि आखिर मनुष्यता का तकाजा क्या इनके अस्तित्व और पहचान के लिए काफी नहीं है?

परिवार के जो सदस्य किन्नर बच्चों को अपने से दूर नहीं करना चाहते उन्हें भी समाज के डर से जबरदस्ती दूर करते हैं। 'तीसरी ताली' में आनंदी आंटी की बेटी निकीता तथा 'पोस्ट

बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' का विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली ऐसे ही पात्र हैं यही नहीं बल्कि बच्चे में शारीरिक अक्षमता तो समाज स्वीकार कर लेता है किंतु जननांग विकारता या विकलांगता समाज को बरदाश नहीं है। यह प्रश्न बार-बार विनोद उर्फ बिमली 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में उठता है, जिससे की समाज का दोहरा चरित्र ही उजागर होता है। सार्वजनिक जगहों पर लोग इनसे (किन्नरों से) बात करना इनके साथ खड़े होने तक में अपमान महसूस करते हैं। समाज की मानवता इनकी यौनिक पहचान के सामने आते ही खत्म हो जाती है। जब वह जान जाते हैं कि वह व्यक्ति एक हिजड़ा है। यह समुदाय अस्पष्ट जेंडर और यौनिक पहचान के कारण अपने नागरिक अधिकारों से वंचित रहने को भी मजबूर किया जाता रहा है, क्योंकि राज्य की सत्ता दो जेंडर भूमिकाओं पर कार्यरत हैं। तीसरे की भूमिका को वह स्वीकारता ही नहीं है। इसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे बच्चों को एक ओर सामाजिक कारणों से अपमानित किया जाता है तो दूसरी ओर राज्य की कोई स्पष्ट नीति नहीं होने के कारण, परिवार द्वारा मजबूर होकर ट्रांसजेंडर समुदाय में शामिल कर दिया जाता है। यहाँ रोजगार की विकल्पहीनता इन्हें परम्परागत पेशा नाच-गाना, बधाई, नेक के लिए मजबूर करती है। इस समुदाय के अधिकांश लोगों के समक्ष जब भी यह समस्या आई उन्होंने यही पेशा अपनाया क्योंकि समाज में उनके लिए यही पूर्व निर्धारित है और जब भी परम्परागत छवि से बाहर जाकर शिक्षा पाकर कुछ करना चाहा तो अपमानित होना पड़ा।

हिजड़ा समाज में कुछ लोग ही जैविक रूप से इस समाज के हिस्सा होते हैं, अधिकांश अपनी यौनिक पहचान की अस्पष्टता के कारण इस समाज में शामिल हो जाते हैं। यौनिकता की

अस्पष्टता से तात्पर्य स्त्री और पुरुष समाजीकृत संरचना में जेंडर आधारित व्यवहार को स्त्रैण बनाता है और समाज में वह बच्चा एक अलग श्रेणी में देखा जाने लगता है। 'तीसरी ताली' उपन्यास की रानी और ज्योति दोनों ही पूर्ण पुरुष थे। वह समाज की कुश्चित प्रथाओं, रिवाजों और आर्थिक कारणों से इस स्थिति में पहुँचते हैं। ज्योति पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार के ए.बी.सी.डी. यानी आरा, छपरा के सफेदपोशों के घृणित और कुश्चित शौकों से परिचित कराता है। लौंडो के रूप में जिसमें खूबसूरत किशोरों को पहले तो शौकिया तौर पर पनाह दी जाती है और बाद में निकाल बाहर कर दिया जाता है। ऐसे में यह किशोर आर्थिक बदहाली यौन शोषण और समाज द्वारा अपमान से बचने के लिए हिजड़ा समूह में प्रवेश करते हैं। हिजड़ा समुदाय का यह उसूल है कि वह किसी भी पूर्ण स्त्री या पुरुष को अपने समूह में शामिल नहीं कर सकते हैं। सोनम ज्योति को समझाते हुए कहती है 'मैं तुम्हें हिजड़ा नहीं बना सकती। भगवान ने तुम्हें पूरा आदमी बनाया है। वैसे भी हम भगवान से डरते हैं। किसी सही आदमी को हिजड़ा बनाना हमारे समाज में कुफ्र है।'² ऐसे में ज्योति का आगे बढ़कर स्वयं को हिजड़ा बनाने का प्रस्ताव 'माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिए राजी नहीं है। मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की चीज़ में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या फिर हिजड़ा बन जाऊँ, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पेट की आग तो बड़ो-बड़ों को न जाने क्या से क्या बना देती है... बिना हिजड़े के भी तो हिजड़ा बना हुआ हूँ। जो अपने को मर्द कहते हैं, वे कौन से हिजड़ों से कम हैं। गरीब का बेटा हूँ तो पूरे गाँव की भौजाई बन गया हूँ।'³ ज्योति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति समाज के तथाकथित वर्ग बाबू श्याम

सुंदर सिंह जैसों की उपभोगी प्रवृत्ति और शौकिया रिवाजों पर घृणा करने को मजबूर कर देती है। ज्योति का दिल्ली आकर इस प्रकार हिजड़ा बनना जहाँ एक ओर पाठक को झकझोर देती है तो वहीं एक प्रश्न भी हमारे सामने खड़ा कर देती है कि इस समुदाय का अस्तित्व समाज में आखिर क्या है?

आर्थिक असमर्थता, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव, तकनीकी अकुशलता और सबसे बड़ी समस्या परम्परागत पेशे का अज्ञान इन्हें वेश्यावृत्ति को पेशा बनाने पर मजबूर करता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी अपने साक्षात्कार में इस समुदाय की आर्थिक-सामाजिक स्थिति के संदर्भ में कहती हैं 'हिजड़ो के पास बुद्धि नहीं होती? उनके पास प्रतिभा नहीं होती? बल नहीं होता? वह राजनीति में नहीं जा सकते? फौज में नहीं जा सकते? इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया? आप ने कलाकारों, प्रतिभावनों को मजबूर कर दिया पचास-पचास रूपए में देह बेचने को, ताली बजाने को।'⁴ इस समुदाय की कमली देवी जो पेशे से यौन कर्मी हिजड़ा है कहती हैं यहाँ जो नए लोग आते हैं वह दो तरह की कमाने की प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं पहला परम्परागत नेग, बधाई, ताली और नाच-गाने से है और जिनके पास यह गुण नहीं होता वह मजबूर होते हैं वेश्यावृत्ति की ओर।

'तीसरी ताली' की रेखा चितकबरी जैसे इस समाज के लोग वेश्यावृत्ति को आसानी से पैसा कमाने का जरिया बना लेते हैं और किशोर हिजड़ों को बाज़ार के अनुरूप तैयार करते हैं क्योंकि बाज़ार में ग्राहक लड़कियों की जगह लौंडे माँग रहे थे। लौंडे लड़कियों की तुलना में सस्ते में भी उपलब्ध थे। विदेशी ग्राहक तो कमसिन लौंडों की मुँह माँगी कीमत दे रहे थे। यह प्रक्रिया एक तरह से मानवतस्करी है। आज इसका वैश्विक बाज़ार बढ़ा है और इसका सबसे बड़ा कारण

आर्थिक बेरोजगारी है। 'तीसरी ताली' और 'गुलाम मंडी' उपन्यासों में इनका संदर्भ दिया गया है।

आर्थिक स्थितियाँ मनुष्य को जितना मजबूर बनाती हैं उससे कई अधिक प्रशासनिक गतिविधियाँ। प्रशासन भी अपने चरित्र में पितृसत्तात्मक होता है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी कहती है घायल हिजड़ों, बीमार हिजड़ों के साथ हॉस्पिटल में भेदभाव किया जाता है। पुलिस चौकी में उनके साथ हुई दुर्घटना को दर्ज नहीं किया जाता। स्वयं उनके साथ दो बार बलात्कार करने की कोशिश की गई। प्रशासन भी मौका पड़ने पर मदद की अपेक्षा शोषण की प्रवृत्ति को अपनाता है। 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में पूनम जोशी जी के साथ हुआ शारीरिक शोषण भी किन्नरों की इस स्थिति को बयाँ करता है। शारीरिक शोषण केवल महिलाओं के साथ ही नहीं होता बल्कि यह समाज भी इससे प्रताड़ित है। अंतर केवल इतना है कि महिलाओं के साथ हुए शोषण को संविधान में बलात्कार के अंतर्गत परिभाषित कर दिया गया है। मगर इस समुदाय के साथ किया गया यौन शोषण संविधान की किसी भी परिभाषा में दर्ज नहीं हो सका है।

समाज ने इंसानियत के जिस तकाजे पर इस समुदाय को मनुष्यता के सामाजिक पैमाने से बाहर किया। वही मनुष्यता मुख्यधारा से अधिक इस समाज में दिखती है। प्रश्न उठता है जिस मनुष्यता व मानवता की बात मुख्यधारा का समाज करता है क्या वह यही मानवता है कि अपने से कमज़ोर का शोषण व बलात्कार करें? यह सभी उपन्यास किन्नर समुदाय के दर्द को पाठक के सामने लाते हैं और मुख्यधारा के लोगो को भी सोचने को मजबूर कर देते हैं कि उनकी मानवता कितनी कमज़ोर और स्वार्थी है उनसे अच्छे तो

यही लोग हैं, जो वक्त पड़ने पर मनुष्यता और उसके मूल्यों की रक्षा करते हैं।

इस प्रकार जरूरत है तो इन हाशिए के समूह के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाने की जो कि शिक्षित वर्ग द्वारा ही संभव है। इन हाशिए के वर्गों पर जितने शोध होंगे उतनी ही इनकी स्थिति सुधरेगी इसलिए आवश्यक है इन वर्गों पर साहित्यकारों द्वारा अपनी लेखनी चलाते रहने और शोधार्थियों द्वारा शोध करने की, ताकि पूरा समाज इनके अस्तित्व को स्वीकार सके और जान सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्त्रीकाल - पृष्ठ सं. 3 (अगस्त, 2017)
2. वही - पृष्ठ सं. 6
3. वही - पृष्ठ सं. 5
4. वही - पृष्ठ सं. 5
5. वही - पृष्ठ सं. 3

सहायक ग्रंथ

1. चित्रा मुद्गल - पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2016
2. प्रदीप सौरभ - तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2011
3. अकरम हुसैन और मनीष कुमार गुप्ता - थर्ड जेंडर कथा की हकीकत, विकास प्रकाशन, कानपुर
4. इकरार अहमद - किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में, अलीगढ़ प्रथम संस्करण -2017
5. आशीष कुमार 'दीपांकर' - भारतीय समाज में किन्नरों का यथार्थ, अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, उ. प्र. -2017
6. भगवंत अनमोल - थर्ड जेंडर और ज़िन्दगी 50-50, विकास प्रकाशन, कानपुर

संपर्क : शोधार्थी, पीएच.डी. हिंदी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, Email : savita3590@gmail.com

उदास मौसम के खिलाफ रश्मी नरताम

कमजोरियाँ तुम्हारी कोई नहीं थी,
मेरी थी एक मैं करता था प्यार। -ब्रेख्त

जन और जीवन से प्रेम करने वाला, जीवन से भरपूर एक 15 साल का लड़का जो अपनी पहली कविता के लिखते ही कवि के रूप न केवल पहचाना जाने लगता है, बल्कि 20 वर्ष का होते-होते स्थापित हो जाता है। किसी युवा के जीवन की इस से अच्छी शुरुवात क्या हो सकती है? 70 का दशक था देश को आजादी मिले 23 साल बीत चुके थे। पर देश के कुछ हिस्सों में अलगाववादी ताकते अब भी शांत नहीं हुई थी, आए दिन नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की खबरें सुर्खियों में रहा करती थी। राख के नीचे दबी चिनगारियों ने माहौल गर्म कर रखा था, बस आग लगाने की देर थी। ऐसे में पंजाब प्रान्त के छोटे से गाँवों 'तलवंडी सलेम' तहसील नकोधर, जिला जालंधर में 9 सितम्बर 1950 में पाश का जन्म हुआ। स्वभाव से क्रान्तिकारी और जागरूक युवा पाश का पहला कविता संग्रह 'लोह कथा' 1970 में और दूसरा कविता संग्रह 'उड़ुदे बाजों मगर' 1974 में आता है। 1978 में 'साडे समियाँ विच' उनके जीवित रहते प्रकाशित तीसरा कविता संग्रह था।

उनकी शुरुवाती, कविताएँ मध्यमवर्गीय युवा चेतनायुक्त दिखाई देती है। ऐसा युवा जो अपने देश से प्रेम करता है गाँवों, खेत-खलियानों, मजदूर, किसानों यहाँ तक की फूलों, पेड़ों, तालाबों को अपने परिवार का हिस्सा मानने वाला वो युवा जिसे अपने दोस्तों, परिवार के लोगों और मौजूदा हालातों के बावजूद व्यवस्था और सत्ता पर पूरा भरोसा है। पाश को अपने आप से भी उम्मीदे हैं। यकीन है, कि वह आने वाले कल को सकारात्मक दिशा दे सकता है। कालांतर में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव भी उनमें लक्षित होता है परन्तु वास्तविकता का सामना होने के बाद उनकी कविता से ये सारे प्रभाव समय के साथ छटते नजर आते हैं। कवि होने के साथ-साथ वह पत्रिकाओं के संपादन और उनमें सशक्त लेखन का भी कार्य कर रहे थे 'हाक', 'एन्टी-47', 'सिआड', 'हेम ज्योति' आदि। दरअसल यही वो समय था जब वह देश विरोधी ताकतों के निशाने पर आए और अपनी अभिव्यक्ति का पुरस्कार उन्हें पूर्व निश्चित षड़यंत्र के तहत उनकी हत्या कर खालिस्तानी आतंकियों द्वारा दिया गया।

वह 23 मार्च 1988 का दिन था जब इस प्रतिभावान युवक की हत्या उनके मित्र हंसराज के साथ गोलियों से भुनकर कर दी गई। तब ये युवा भारत देश में किसी परिचय का मोहताज नहीं रह गया। हर देशभक्त की जबान पर इनका नाम था। पाश की मृत्यु के पश्चात इनका चौथा काव्य संग्रह 24 अप्रैल

1988 को प्रकाशित किया गया। इस संग्रह में इनकी कुछ पुरानी कविताओं के साथ 23 पूर्व अपेक्षाकृत लम्बी और नई कविताएँ संकलित थीं। 37 साल के अपने सीमित जीवनकाल में इन्होंने विद्यार्थी जीवन के आलावा नक्सली गतिविधियों के प्रति आकर्षण, जन नाटकों में भागीदारी, वामपंथी परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, साहित्यिक मंचों पर कविता वाचन, भाषण, जैसे रचनात्मक कार्यों के साथ-साथ झूठे मुकदमों के हवाले से जेल कारावास गमन द्वारा सजा भुगतना जिसमें हत्या का आरोप भी शामिल है, जैसी गतिविधियों में भी संलिप्त रहें। बावजूद इसके उनका संपादक और कवि का रूप ही रूप ही लोगों के जेहन पर हावी रहा जिसका कारण उनकी धारदार परन्तु सहज ग्रामीण बिम्बों से सजी भाषा थी जिसमें नएपन की ताजगी भी थी और अपनी पुरानी जड़ों का मजबूत आधार भी था।

मूलतः यह पंजाबी भाषी कवि और लेखक रहे हैं। पंजाबी लेखकों में शिव बटालवी, जसवंत सिंह राही, सुरजीत पातर, अमृता प्रीतम आदि प्रसिद्ध लेखक इनके समकालीन रहें हैं परन्तु पाश का लेखन किसी लेखक से प्रभावित न होकर पूर्णतः मौलिक एवं विशेष है। यदि हिंदी पट्टी के साहित्य की बात की जाए तो पाश को धूमिल, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, निराला की वैचारिक एवं प्रगतिशील विचारधारा की परंपरा का कवि कहा जा सकता है। प्रायः प्रश्न पूछने की शैली 70-80 के दशक के कवियों में दिखाई देती है। पृष्ठभूमि से जब समाधान गायब हो तो एक साथ कई लेखकों की वाणी में यह प्राश्निक समरूपता स्वाभाविक है समकालीनता का यह एक मूल लक्षण है। विचारों की समानता कई व्यक्तियों में एक-सी हो सकती है। परन्तु अभिव्यक्ति की भिन्नता ही जहाँ एक ओर आपको औरों से अलगती है

वही दूसरी ओर आपको अपने आप में विशेष भी बनाती है। पंजाबी से कई भारतीय भाषाओं में पाश की रचनाओं का अनुवाद होने का कारण भी उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति ही है। भाषा और शब्द चयन कि जो नवीनता हमें पाश के यहाँ देखने को मिलती है, वह उनके समवयस्क कवियों में दुर्लभ है।

‘बीच का रास्ता नहीं होता’ नामक पाश की कविताओं का ‘पंजाबी भाषा’ से ‘हिंदी भाषा’ में अनुवादित एवम सम्पादित (प्रो. चमनलाल, जे.एन.यू.) काव्य संकलन द्वारा पाश की कविताओं का पटाक्षेपन हिंदी भाषियों में हुआ। यदि ऐसा कहाँ जाए तो गलत नहीं होगा क्योंकि इसके पहले तक पाश सम्बन्धी आलेख तो हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते थे परन्तु उनकी कविताओं से हिंदी पट्टी के पाठकों का परिचय कराने का श्रेय तो चमनलाल जी को ही जाता है। यह काव्य संकलन हिंदी भाषी पाठकों के बीच खासा लोकप्रिय हुआ जिसकी प्रस्तावना नामवर सिंह जी ने लिखी। जिसमें पाश को उन्होंने ‘पंजाबी का लोर्का’ कहकर संबोधित किया है और ‘शापित कवि’ कहकर श्रद्धांजलि दी है। ‘लोहा’, ‘हाथ’, ‘सचमुच’, ‘कामरेड से बातचीत’, ‘जहाँ कविता खत्म नहीं होती’ जैसी महत्त्वपूर्ण कविताओं का उल्लेख करते हुए पाश को एक ‘खतरनाक कवि’ कहाँ। धूमिल और केदारनाथ अग्रवाल से उनकी तुलना करते हुए पाश को ‘लोहे’ का स्वाद जानने वाला ‘सरापा-कवि’ भी कहाँ है। नामवर सिंह जैसे बड़े आलोचक द्वारा लिखी गई ऐसी दमदार भूमिका ने ‘बीच का रास्ता नहीं होता’ इस काव्य संकलन की ओर सबका ध्यान खींचा।-‘हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए।’² पाश की कविता की यह पंक्तियाँ जैसे युवाओं का ध्येय वाक्य बन गईं न जाने कितने युवा आन्दोलनों में यह पंक्तियाँ मसीहे की तरह गाई जाने लगीं। दमन, शोषण,

उत्पीड़न, अत्याचार के खिलाफ धावा बोलने के लिए पाश के गीत जब स्वर में स्वर मिलाकर गाये जाते तो आक्रोश को सत्य की आँच में तपाए जाने का एहसास दमनकारियों को झुकने पर मजबूर कर देता। मार दिए जाने का भय पाश को कभी सत्ता नहीं पाया। असत्य और आरोपों के विरुद्ध खड़े रहने का साहस पाश को याद करते हुए, उसे गुनगुनाते हुए एक साधारण युवा अपने आप को पाश जैसे मजबूत योद्धा के समकक्ष खड़ा पाता।

उनकी कविताएँ सिर्फ आंदोलनकारी ही नहीं प्रेमी भी अपनी प्रेमिकाओं को बड़े चाव से सुनाने लगे। संकल्प और स्नेह का गाढ़ा सम्मिश्रण 'थी', 'हैं' और 'रहेंगी' उसकी कविताएँ। अस्तित्व की पहचान हो या हक की लड़ाई- 'सबसे खतरनाक होता है मुर्दा शान्ति से भर जाना।'³ जब भी कोई इनसान पाश की यह पंक्तियाँ सुनता या पढ़ता है तो एक बार फिर नए विश्वास के साथ उठ खड़ा होता है। पाश की भाषा में वह ताकत थी जो सैकड़ों लोगों की पहचान बन सकती थी। कई परिभाषाओं को गढ़ सकती थी। अनेकों शब्दों को नए अर्थ, प्रदान कर सकती थी- 'आँख की पुतली में हाँ के सिवाय कोई भी शब्द अश्लील हो।'⁴

यह पंक्ति भी तो अश्लीलता की एक नई परिभाषा ही तो है। एक ऐसी परिभाषा जो सत्ता और अधिकारों का दुस्प्रयोग करने वालों के सच्चे चेहरे सामने ले आती है। मजबूरन हाँ बोलने वाले को ना बोल पाने का साहस देती है। उसे प्रश्न पूछना सिखाती है। उसका इस सच्चाई से सामना कराती है कि सत्तासीन व्यक्ति ने उसे इस तरह से उलझाएँ रखा की वह कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दे पाया कि वो यह सोच पाता कि सवाल पूछना उतना मुश्किल नहीं है जितना सत्तासीन ने, सत्ताधीन व्यक्तियों को सिखा रखा है बल्कि

जवाब देना ज्यादा कठिन होता है। हालांकि प्रश्न पूछने का साहस सदैव ही मानवीय अस्तित्व हेतु प्रथम प्राथमिकता रही है बावजूद इसके की हम लोकतांत्रिक समाज का हिस्सा है। परन्तु सत्ता का समाज की तरफ उदासीन रवैया और अधिकारों का दुस्प्रयोग इस भ्रम को जल्दी ही तोड़ता है और पाश का इस सत्य के अन्वेषण की तरफ अगुआई ही इस बात का प्रमाण है कि भले ही भौतिक हितों की पूर्ति राजनीति की तरफ ले जाती है परन्तु पाश भौतिक जड़ों से विचारों के स्तर पर जुड़े हैं और इसी कारण वह अपनी स्वतंत्र विचारधारा निर्मित कर पाए। समय के हर दौर में राजनीतिक शक्तियों द्वारा यह खेल खेला जाता है।

जहाँ आम आदमी केवल राजनेताओं के हाथ की कठपुतली है और समाज, 'तमाशबीन'। बकौल पाश- 'मैं जानता हूँ उन्हें, किस तरह कच्ची सोच को घेरा डालने के लिए, वे हजारों रास्तों से आते हैं/उन्हें जाँच है। हमारे ही जिस्मों को हमारे खिलाफ इस्तेमाल करने की।'⁵

पाश के पास ऐसा क्या है जो उन्हें इन दमनकारी ताकतों के आगे झुकने नहीं देता? भीषण जुल्मों के खिलाफ लड़ते रहने की ताकत देता है? वो क्या है जो पाश को साधारण मनुष्यों से असाधारण मनुष्य की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है? वो कौन सा बल है जो पाशविक प्रवृत्ति के आतंकियों से उन्हें एक क्षण में कहीं अधिक बलशाली बना देता है? वो कौन सा भाव है उनकी आँखों में जिसकी चमक को फीका कर देना चाहते हैं दहशतगर्द? जिसके तेज से रूह काँपती है दहशतगर्दों की? उत्तर तो बड़ा सरल सा है पर उसका मिलना दुर्लभ मालूम पड़ता है। 'मनुष्यता' में, 'इंसानियत' में हर एक 'मनुष्य' में, मनुष्य होने के नाते सहज विश्वास। इतना सहज भाव है पर आश्चर्य है कि क्यों ये स्वयं मनुष्यों

की प्रजाति में दुर्लभ हो चला है? अगर ये बात सच ना होती तो क्या हमें साहित्य की, कलाओं की, संगीत की प्रकृति की उसके एहसास की, समय-समय पर इतनी तीव्र आवश्यकता महसूस होती। अपने आप को सर्वशक्तिमान समझने वाले मनुष्य ने अपने इस प्राकृतिक भाव को, अपने मूल स्वभाव को बदला ना होता, स्वार्थवश खोया ना होता, तो क्या मजाल थी आतंकियों की, कि वे हम पर कभी हावी हुए होते? इस कठिन समय में हमें जरा ज्यादा मनुष्य होने के लिए पाश की जरूरत है, अपने आप को पहचानने के लिए पाश की जरूरत है, दूसरों की मदद करने के लिए पाश की जरूरत है। इसका सबूत यह है कि, पाश हम जैसे साधारण मनुष्यों से ज्यादा संवेदनशील है उनकी ये पंक्तियाँ याद आती है कि-‘मेरे पास कोई चेहरा/सम्बोधन नहीं कोई/ धरती का पागल इश्क शायद मेरा है/और इसलिए जान पड़ता है/मैं हर चीज पर से हवा की तरह सरसरा कर गुजर जाऊँगा/सज्जनों/मेरे गुजर जाने के बाद भी/मेरे सरोकार की बाजू पकड़े रखना।’⁶ सच ही कहाँ पाश ने उनका धरती के प्रति पागल इश्क, ही तो था जो उन्हें धरती के हर एक जीव से, हर एक मनुष्य से, उनके गाँवों से, उनके खेत खलियानों से, यहाँ तक तक के तालाब और उसकी मछलियों से वास्ता रखने को, लगाव रखने को, मजबूर करता है। उनका यह मनुष्यता से सरोकार ही तो है जो हमें आज भी पाश के जाने के 34 साल बाद भी पाश को इतनी शिद्दत से याद करने को मजबूर करता है स्वयं पाश के शब्दों में-‘मैं आदमी हूँ, बहुत कुछ छोटा-छोटा जोड़कर बना हूँ।’⁷

‘घट बिंदु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः’ संस्कृति की इस सूक्ति के अनुसार जैसे बून्द-बून्द से घड़ा भरता है वैसे ही पाश का आदमी बहुत कुछ छोटा-छोटा जोड़कर बना है। हमें कहाँ

फुरसत है कुछ बहुत बड़ा घटित हुए बगैर रूक कर अपने आस-पास देखने की? कुछ सोचने की? हमें कहाँ वक्त है अपने ‘आप’ को छोड़कर जरा सा अपनों की सोचने की? ऐसे में छोटी-छोटी बातों पर सोचने वाला तो हमसे बड़ा ही हुआ ना? एक-एक आदमी को जोड़कर तो घर बनता है, घरों को जोड़कर बस्ती, बस्तियों को जोड़कर गाँवों, गाँवों को जोड़कर शहर और न जाने कितने शहरों को जोड़कर देश बनता होगा? कभी-कभी लगता है ना कि, इतना सारा हिसाब-किताब जरूरी है क्या? बस वही तो नहीं किया ना, उस बन्दे ने जब 15 का था तो 20 में क्या करूँगा? यह नहीं सोचा। आज जब खालिस्तानियों के विरुद्ध लिखता हूँ अगर कल वे मारने के लिए सामने आ खड़े हुए तो क्या करूँगा? छोटी-छोटी चीजों का हिसाब करने के बजाए छोटे से छोटे, बड़े से बड़े आदमी को जोड़ने की कोशिश की। पाश ने जिन्दगी और आदमी से टूटकर मोहब्बत की और जब इस मोहब्बत को शब्दों में उतारा तो कविता से और कविता पढ़ने वालों से इस कदर मोहब्बत की, कि जब कविता भी लिखनी चाही तो ऐसी-‘मैंने एक कविता लिखनी चाही थी/सारी उम्र जिसे तुम पढ़ती रह सको।’⁸

वो वीरान आँगन जहाँ अब सिहरती खामोश रातें हैं। दिन के वीराने में कौए बोला करते हैं दोपहरे सुनसान पर बदहवास हुआ करती है, उसी आँगन में कभी उसका कोई दोस्त, कोई खून का रिश्ता जीता रहा होगा, जिन्दादिली से मुस्काता रहा होगा, वो माँ रही होगी जो कभी गर्म रोटी लेकर अपने बेटे के पीछे खा लेने की मनुहार करती रही होगी, ऐसी कोई थाली पाश ने भी साझा की तो, होगी! उस दोस्त या उस खून के रिश्ते का आदमी वो व्यक्ति जब कभी माँस का लोथरा बनकर जब उस आँगन में गिरा होगा, उस माँ ने रोते चिंघाड़ते अपने साथ किस

दर्द से पूरे गाँवों को भिगोया होगा, और उस बाप का क्या? जो अपने से आधी उमर भी, ना जी पाए बच्चे की लाश को कान्धा देकर घर लौटा होगा। ऐसे किसी भयानक मंजर का हिस्सा बना तो होगा, ना पाश? बिना इसके तो नहीं लिख सकता था वो कि-सबसे खतरनाक वो चाँद होता है/जो हर हत्याकांड के बाद/वीरान हुए आँगन में चढ़ाता है/लेकिन आपकी आँखों में मिर्च की तरह नहीं पड़ता।⁹ पाश के छोटे से जीवनकाल में उसके मार्क्सवादी रूझान की चर्चा अवश्य ही होती रही और समय के साथ मार्क्सवाद से उसकी दूरी भी उसके वामपंथी दोस्तों या पहचानने वालों में चर्चा कम और उस पर लगे आरोपों के रूप में ज्यादा हावी रही कोई उसके मार्क्सवादी रूझान को नक्सली समूहों के समर्थन में देखता, कोई उसके मार्क्सवाद के प्रति बदलते, विचारों को डरकर भागने और कर्म के नाम पर केवल सिर्फ बड़ी-बड़ी बातें करते रहने के आरोपों के रूप में देखते मढ़ते रहे। जिसके जवाब में पाश की 'कामरेड से बातचीत' नाम कुछ लम्बी कविताएँ भी हैं जहाँ मार्क्सवाद से मन उचाट होने का प्रमुख कारण हिंसा नजर आता है उनके शब्दों में- 'आदमी का गर्म लहू ठण्डे फर्श पर फैलना/ और नस्ल में सुधार का बहाना/तुम्हें कैसा लगता है कामरेड?'¹⁰

साफ पता चलता है कि इनसान, इनसान का खून बहाकर किसी और इनसान को इंसाफ दिलाने की बात करें, कत्ल करने वाला ये 'अंधा-इंसाफ' उनकी इंसानियत के खिलाफ था। जिसका वह समर्थन नहीं कर सकते थे। शुरुवाती समय में जब वह 15-16 साल के थे तब मार्क्सवाद का समर्थन या उस साहित्य के लेखन-वाचन की तरफ उनका रूझान होना स्वाभाविक था। क्योंकि एक ऐसा बच्चा जो अपने जन्म के समय से ही पंजाब में वर्ग के संघर्ष को, गरीबी को, गाँवों

वालों को, भोले-भाले किसानों को अपने हक के लिए खालिस्तानी आतंकियों के समर्थन के तरफ मुड़ता देख रहा था तो उसे भी कही ना कही लगता होगा कि इस हिंसा का मुकाबला, समाज के हित में की गई हिंसा, सबको सब का हक और अधिकार दिलाने के लिए की गई हिंसा द्वारा किया जा सकता है। ऊपर से आज़ाद और भगत सिंह जैसे युवा शहीदों द्वारा दिलाई गई आजादी को अपने कंधे पर जिम्मेदारी की तरह महसूस करता ये युवा समाज के लिए कुछ बढ़ा कर गुजरना चाहता था। पाश का स्वभाव भले ही इंकलाबी था पर उनका संवेदनशील मन अपनों का बहता खून देखने का साहस नहीं रखता था। मनुष्यता और मनुष्य के लिए उनका निस्वार्थ प्रेम उन्हें स्वयं तो शहीद होने की इजाजत देता है पर किसी का खून बहते देखने की इजाजत नहीं देता है। इसलिए कालांतर में हम पाश का मार्क्सवाद के प्रति विकर्षण भी देखते हैं जिसका मूल कारण हिंसा में अविश्वास है।

हिंसा और अलगाववादियों का विरोध करते पाश ने जब कभी शब्दों को अपनी कविता में इस्पात बनाकर ढाला, तो ऐसा ढाला की शब्दों की मार बन्दूक की गोली से कहीं ज्यादा लगी जिसकी गवाही उनकी गोलियों से भुनकर की गई हत्या है।- 'मेरे पास बहुत कुछ है/शाम है- बौछारों से भीगी हुई/जिंदगी है-नूर में दहकती हुई/और मैं हूँ 'हम' के झुरमुट में घिरा हुआ/ मुझसे और क्या छीनेंगे/शाम को किसी दूरदराज की कोठरी में बन्द करेंगे?/जिंदगी से जिंदगी को कुचल देंगे?/ 'हम' में से 'मैं' को निथार लेंगे?/ जिसे आप मेरा 'कुछ नहीं' कहते हैं/उसमें आपकी मौत का सामान है/मेरे पास बहुत कुछ है/मेरे उस 'कुछ नहीं' में बहुत कुछ है।'¹¹ पाश की इन पंक्तियों में सचमुच बहुत कुछ है। पाश के उस कुछ नहीं में...उसके मनुष्यता के 'हम' में से वो

‘मैं’ के अकेलेपन को, मनुष्य को, समाज से कटाने वाले ‘मैं’ को, अहंकार के रूप में नहीं परोस पाए वह आतंकी! वो आतंकी। उनके ‘हम’ की शक्ति में समाज और देश से अलग अमानवीयता जिसे वो दुसरे देश के रूप में बसाना चाहते थे नहीं बसा पाए। आतंकी पाश के, हम के झुरमुट से, उसके मनुष्यता के झुरमुट को नहीं छोट पाए। उसके ‘कुछ नहीं’ को हमने फिर आज के सब कुछ के बीच याद किया है और याद करते रहने की सख्त जरूरत महसूस की है। जब-जब भी हम थोड़े कम इनसान होंगे तब-तब पाश की जरूरत एक ज्यादा इनसान होने के रूप में महसूस करेंगे।

1. ब्रेष्ट बर्टोल्ट, (संपा. व मूल जर्मन से अनु.) मोहन थपियाल, इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहाँनियाँ, परिकल्पना प्रकाशन 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड निशान्तगंज, लखनऊ-226006, प्रथम संस्करण-10 फरवरी-1998, पृ. 43
2. बीच का रास्ता नहीं होता, (संपा-अनु.)

- चमनलाल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110 002, आठवाँ संस्करण-2017, पृ. 78
3. वही पृ. 188
4. वही पृ. 158
5. सम्पूर्ण कविताएँ पाश, (संपा-अनु.) चमनलाल, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एस. सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134 113 (हरियाणा), चतुर्थ संस्करण-2017, पृ. 257
6. वही पृ. 258
7. वही पृ. 139
8. वही पृ. 136
9. बीच का रास्ता नहीं होता, (संपा-अनु.) चमनलाल, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110 002, आठवाँ संस्करण-2017, पृ. 188
10. सम्पूर्ण कविताएँ पाश, (संपा-अनु.) चमनलाल, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एस. सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134 113 (हरियाणा), चतुर्थ संस्करण-2017, पृ. 187
11. वही पृ. 84

संपर्क : शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110007,
Email : rashminartam63@gmail.com, मो. 7987253674

एक टुकड़ा इतिहास (1975)

गोपाल उपाध्याय

डॉ. नीतू रानी

आधुनिकता का स्वरूप औद्योगिकरण एवं वैज्ञानिक तर्क पर आधारित है। हिंदी 'उपन्यास' आधुनिक युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है क्योंकि इसके कलेवर में इन तर्कों को बखूबी दिखाया जाता है। उपन्यास में लेखक जीवन के विविध पहलुओं का, परिस्थितियाँ का चित्रण व्यापक रूप में करता है।

हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा का आरम्भ प्रेमचन्द से जाना जाता है। अतः विवेचन की सुविधा के लिए हिंदी उपन्यास की विकास-परम्परा का हम तीन चरणों में विभक्त करेंगे - प्रेमचन्द-पूर्व हिंदी उपन्यास, प्रेमचन्द एवं उनका समकालीन हिंदी उपन्यास तथा प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास। प्रेमचन्द ने ही उपन्यास को वह आधार व नींव दी जिसके बाद उपन्यास परम्परा की इमारत मजबूत और ऊँची होती जाती है। प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के इसी मूल प्रतिपाद्य मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना। इन्होंने पहली बार इस सत्य को पहचाना कि उपन्यास सोद्देश्य होना चाहिए अर्थात् उपन्यास या कोई भी साहित्यिक विधा मनोरंजन के लिए नहीं होती वरन् यह मानव जीवन को शक्ति और सुन्दरता प्रदान करने वाली सोद्देश्य रचना होती है।

प्रेमचन्द पर यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि वह सहानुभूति दिखाते हैं दलित पात्रों पर। लेकिन क्या गोदान का अध्ययन करने के उपरान्त यह भ्रम नहीं टूटता कि वह सिर्फ सहानुभूति ही नहीं विद्रोह भी दिखाते हैं। रही बात दलितों को स्वर देने की तो प्रेमचन्द ने अपनी कृति 'गोदान' में यह काम भी किया है। दलितों द्वारा मातादीन के मुँह में हड्डी ठूँस दिए जाने का प्रसंग इसका उदाहरण है। "गोदान" का रचना काल 1936 का है, तब तक डॉ. अम्बेडकर द्वारा चलाए गए आन्दोलन के परिणामस्वरूप दलितों में अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर जागरूकता पैदा हो चुकी थी।¹ प्रेमचन्द का हड्डी दलित पात्रों द्वारा की गई क्रान्तिकारी पहल है।

दलितों के प्रतिरोध को ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति सिर्फ प्रेमचन्द ही दे सकते थे। अतः तद्युगीन भारतीय समाज में दलितों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, जाति-व्यवस्था की अमानवीयता और फिर दलितों द्वारा उसके प्रतिकार की यथार्थ और प्रामाणिक अभिव्यक्ति है।

'नव जागरण' की अवधारणा में 'दलित' समुदाय के उत्थान का भाव भी शामिल था पर सनातनधर्मी वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक इसके पक्ष में नहीं थे। इसी कारण किशोरीलाल गोस्वामी, महता लज्जाराम शर्मा आदि आर्यसमाज आन्दोलन के विरोधी हिंदी उपन्यासकारों ने वर्ण-व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, छुआछूत का समर्थन और शूद्रों तथा दलितों के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया था। वस्तुतः हिंदी में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य से सहानुभूतिपूर्ण दलित-विमर्श आरम्भ हुआ और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में यह और सशक्त होकर सामने आए। आजादी

के बाद औरों ने अपने उपन्यासों में जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के पात्रों के आर्थिक और दैहिक शोहण का, जिसमें उस वर्ग की स्त्रियों का यौन-शोषण भी था, गहरी सहानुभूति और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अंकन किया।

गोपाल उपाध्याय का एक टुकड़ा इतिहास (1975) इस उपन्यास में नायिका चनुली (चन्दी देवी) के अमानवीय जाति व्यवस्था में घोर प्रताड़ना पाने और उस व्यवस्था को समाप्त करने के लिए जन जागरण करने और संघर्ष करने का वर्णन है। उपन्यास की नायिका चनुली दलित वर्ग से संबंधित डोम जाति की है। आठवीं तक पढ़ी हुई इस सुंदर-सुशील कन्या के रूप और यौवन पर मुग्ध होकर ब्राह्मण युवक कांतमणि उसे अपनाकर घर ले आता है। इसके साथ ही उसकी और चनुली की सामाजिक प्रताड़ना का दयनीय अध्याय आरंभ हो जाता है और कांतमणि थोड़े ही समय में इस संघर्ष में टूटकर बिखर जाता है। **“सुबह नौले पर पानी भरने गई हुई चनुली का घड़ा गाँव की औरतों ने उठाकर फिर फेंक दिया।... चनुली गाँव भर की आँख में किरीकिरी बनी हुई थी तो लाचार चनुली क्या करे। जब खाली घड़ा सिर पर रखकर लौट आई तो कांतमणि का खून खौल कर रह गया।³ चनुली अपने पति की परेशानी देखकर उद्वेलित हो उठती है। वह दराँती लेकर पानी भरने जाती है और कहती है - ‘जिसने पिया हो अपनी माँ का दूध वह आए अब मेरे नौले पर मुझे पानी भरने से रोकने के लिए। मैं भी नरुआ की लड़की नहीं अगर इसी दराँती से टुकड़े-टुकड़े करके गिंडा न दूँ। मुझे तो मरना ही है, पर पूरा गाँव लेकर ही न मरूँ तो जार और पातर की लड़की बताना मुझे।..⁴ चनुली रूढ़िग्रस्त समाज से आहत होकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए चीख उठती है**

और समाज को चेतावनी देती है। इसके अलावा पति के छोड़े जाने पर वह टूटती नहीं बल्कि और सशक्त होकर आन्दोलन करती है तथा समाज को जाग्रत करती है। समाज को जाग्रत करने के लिए वह जी तोड़ संघर्ष करती है। आगे चलकर चनुली एक गाँव में अध्यापिका बन जाती है लेकिन वहाँ का सवर्ण समाज उसे इतनी आसानी से स्वीकार नहीं करता। गाँव के लोगों का कहना था... सरस्वती के पवित्र मंदिर में अंबिके, अंबालिका सी पवित्र कन्याएँ डूमणी से दान लें? डूमणई को सिर झुकाकर प्रणाम करें? जीवन भर डूमणी की शिक्षा पर जिएं और नतमस्तक रहे?..⁵

सवर्ण समाज की इस विचारधारा से स्पष्ट है कि वो लोग नहीं चाहते कि कोई दलित प्रगति करे। मगर चनुली यहाँ पर भी हार नहीं मानती और नेता जी राम जी एम.एल.ए. की मदद से वह अल्मोड़ा के महान हरिजन नेता मुंशीराम से मिलती है। यहीं से चनुली का व्यक्तित्व उभरने लगता है। वह उस समय हो रहे दलित आंदोलन से प्रभावित होती है और खुद दलित महिलाओं में जागृति लाने का कार्य करती है। चनुली आठवीं तक तो पढ़ी लिखी थी ही। मुंशीराम जी ने उसे बहुत सा गांधी जी का व अन्य दलित साहित्य पढ़ने को दिया। उसी के आधार पर चन्दी देवी ने दलित आन्दोलन का बिगुल बजा दिया। इस बिगुल से सारे हरिजनों में जोश और उत्साह की नई लहर दौड़ गई। इसके लिए वह गाँव-गाँव पैदल घूमती और कई कष्ट उठाती। वह आन्दोलन चलाती, धरना देती और हरिजनों एवं दलितों का मंदिरों में प्रवेश कराती, जेल जाती, किन्तु कभी हिम्मत नहीं हारती। दलितों के बच्चों को सभ्य, सुसंस्कृत बनाने में जी-जान से जुट जाती है और एक ‘समता आश्रम’

खोलती है। वैसे उसने सवर्णों के बच्चों को भी बुलाया लेकिन उन लोगों ने अपने बच्चे उसके यहाँ नहीं भेजे और इस आश्रम को हटवाने के लिए नेता जी मुंशीराम जी से बात की। इस पर चनुली पूरे साहस व ईमानदारी से समाज वालों को ललकारती है -“आज सब चुप हैं। जानवरों की बजाय उस पाँच नाली जमीन में कुछ आदमियों के बच्चे इंसान बन रहे हैं तो क्या यह बड़ा घटिया काम हो रहा है? गाँव वाले तो कभी न देते। एस.डी.एम. ने जमीन दे दी, बेकार तो रहती थी ही, तो कोई गुनाह कर दिया मैंने? और फिर आश्रम का नाम ‘समता आश्रम’ है। इसमें बीठों के बच्चों के प्रवेश के लिए प्रतिबंध नहीं है। यह ‘समता आश्रम’ तो सबके लिए खुला है। मैं इसलिए इस संस्था

पर जान दे रही हूँ क्योंकि मैं भुक्तभोगी हूँ। और मैं न बीठ रह गई हूँ न डूम। इसलिए मैं ही ‘समता आश्रम’ के लिए पूरी तरह योग्य हूँ क्योंकि मैं जाति हीन हूँ।...⁶

उपन्यास में दलित वर्ग के प्रति रूढ़िवादी समाज की अमानवीयता और दलित वर्ग का उसके प्रति विद्रोह और संघर्ष का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह बहुआयामी है।

चनुली देवी द्वारा दलितों के लिए संघर्ष का चित्रण इस उपन्यास को एक वैशिष्ट्य प्रदान करता है। स्त्री होकर भी जो कार्य दलितोद्धार, दलित जागरण, समाज-सुधार के लिए वह करती है, वह अपूर्व है। चनुली दलित आन्दोलन को धार प्रदान करती है और सवर्ण समाज के प्रति संघर्ष को अपना उद्देश्य बना लेती है।

1. नरेन्द्र कोहली, ‘हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त,’ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1989, द्वितीय संस्करण 2002..... पृष्ठ-42
2. ‘आजकल’, जुलाई 2014, सं- फरहत परवीन, द्वारा पल्लवी प्रकाश, (प्रेमचन्द की रचनाओं में दलित तथा नारी प्रश्न), पृष्ठ-17
3. गोपाल उपाध्याय, ‘एक टुकड़ा इतिहास’, भारतीय पुस्तक परिषद, मयूर विहार, नई दिल्ली, पृष्ठ-13
4. गोपाल उपाध्याय, ‘एक टुकड़ा इतिहास’, भारतीय पुस्तक परिषद, मयूर विहार, नई दिल्ली, पृष्ठ-13
5. गोपाल उपाध्याय, ‘एक टुकड़ा इतिहास’, भारतीय पुस्तक परिषद, मयूर विहार, नई दिल्ली, पृष्ठ-13
6. गोपाल उपाध्याय, ‘एक टुकड़ा इतिहास’, भारतीय पुस्तक परिषद, मयूर विहार, नई दिल्ली, पृष्ठ-166

मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है राज्यवर्द्धन

मेरा जन्म 1960 में बिहार के एक छोटे से कस्बानुमा-शहर जमालपुर के निम्न मध्यवर्गीय परिवार में। पिता जी जमालपुर रेल कारखाना में क्लर्क। पिता जी को पढ़ने-लिखने का शौक था। एक पुस्तकालय में नौकरी के बाद पार्ट टाइम लाइब्रेरियन का काम सम्हालते थे। लाइब्रेरी जाने से पहले घर में कुछ देर के लिए पत्रिकाएँ (धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, दिनमान, माधुरी, नंदन आदि) आती थीं। कोशिश होती थी कि जल्दी-जल्दी कुछ न कुछ पढ़ लिया जाए।

कक्षा आठ में उपन्यास पढ़ने का चस्का लगा। 10 वीं-11वीं (1974) कक्षा में गंभीर साहित्य के प्रति रुझान बढ़ा। पिता जी लाइब्रेरियन थे, इसलिए पढ़ने के लिए किताबों की कभी कमी नहीं हुई। धर्मवीर भारती, अज्ञेय राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शिवानी, यशपाल, भगवती चरण वर्मा आदि लेखकों के साथ बांग्ला से हिंदी में अनुदित शरतचंद्र, शंकर, विमल मित्र, अशापूर्णदेवी आदि के उपन्यासों को भी एक के बाद एक पढ़ता गया। कोर्स की किताबों कम, बाहरी किताबों को ज्यादा पढ़ा।

2010 में कविता की ओर एकाएक मुखातिब हुआ। कॉलेज के जमाने में छिटपुट कुछ कविताएँ लिखी थी। एकाध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी पर 2010 के बाद से कविता की ओर गंभीरता से ध्यान दिया।

दैनिक जागरण कृतिओर, हंस, वर्तमान साहित्य, जनसत्ता (वार्षिकांक), प्रभात खबर (वार्षिकांक), शुक्रवार (वार्षिकांक), प्रभात वार्ता, अक्षर पर्व, नई धारा, समकालीन अभिव्यक्ति, दोआबा, हरिंगंधा, नई धारा, मुक्तांचल आदि पत्र-पत्रिकाओं में नियमित कविताएँ प्रकाशित होने लगीं।

2013 में अमूर्त कविताओं के विरुद्ध समकालीन 11 कवियों की कविताओं का संकलन 'स्वर-एकादश' (बोधि प्रकाशन) का संपादन किया। स्वर-एकादश और उसके कवियों की पत्र-पत्रिकाओं में यथेष्ट चर्चा हुई।

2019 चुनाव से पहले समकालीन 50 कवियों के चुनी हुई पचास प्रतिरोधी कविताओं की फेसबुक-प्रस्तुति की भी सराहना हुई।

साहित्य को समाज का दर्पण कहाँ जाता है। बिना साहित्य के समाज गूंगा होता है। साहित्य हमारी अनुभूतियों को तीव्र कर धार देता है। हमें संवेदनशील बनाता है ताकि हम मानवीय बन सकें। इसलिए कहाँ गया है कि मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।

साहित्य में किसी विषय को संकुचित या सीमित रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि विस्तृत रूप में विश्लेषित किया जाता है। यह विश्लेषण ही समाज को आगे ले जाता है।

साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है बल्कि जीवन की समस्याओं पर भी विचार करना और उनका समाधान तलाशना भी है।

इसलिए प्रेमचंद ने साहित्य को 'राजनीति के आगे चलनेवाला मशाल' कहते थे। मशाल

या टॉर्च का काम है - अंधकार में प्रकाश दिखाना ताकि भविष्य की राह सुगम हो सके। परंतु दुर्भाग्य से आज साहित्य लोभ-लाभ के लिए राजनीति के पीछे पीछे चलनेवाला अनुचर बन गया है। मौजूदा समय में देश में कोई विजनरी राजनेता या स्टेट्समैन नहीं हैं। सभी राजनीतिक दलों का एकमात्र उद्देश्य येन केन प्रकारेण सत्ता पर काबिज होना है। लोकतंत्र चुनाव में रिङ्गूट हो गई है। ऐसे समय में साहित्य में पुनः ऐसे लेखकों/कवियों की जरूरत है जो साहित्य को मशाल बना सके।

कविता की रचना प्रक्रिया जटिल है। लहरों की तरंगों की तरह मन में भाव उठते हैं। ठीक तभी समय, जगह, परिस्थितियाँ अनुकूल

हो तो कविता उतर आती है। नहीं तो विलीन हो जाती है। समाज और सत्ता की विसंगतियों पर जितनी सहजता से कविता लिख लेता हूँ, अन्य विषयों पर नहीं लिख पाता हूँ। पर्यावरण व प्रेम भी मुझे कविता लिखने को प्रेरित करते हैं।

अबूझ या अमूर्त बिंबों वाली कविताएँ मुझे नहीं पसंद हैं, इसलिए वैसी कविताएँ नहीं लिख पाता हूँ। मैं कविता या साहित्य को समाज परिवर्तन का औजार मानता हूँ।

मेरी नजर में साहित्य सृजन का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त विसंगतियों को दूर करना है। एक बेहतर समाज को रचने का स्वप्न देखना है।

1. कबीर अब रात में नहीं रोता

रचा जा रहा है
अधूरा सच

फँलाया जा रहा है-
स्वप्निल आकाश में
झुटपुटे शाम के वक्त
सुबह की लालिमा होने का भ्रम
कि सूरज तो बस उगने ही वाला है

छोड़ो अब ..
कौन जाए अलख जगाने

अंधकार में
सुखी हैं सब
मिट गया है
सत्य असत्य
रूप अरूप का भेद

विवेक भी अब जागृत नहीं होता
रहता है
जान बूझकर मौन

कबीर रात में
अब दुखी नहीं होता
दुनिया के बारे में सोचकर

सोता रहता है
रात के अंधकार में
अलसाया
सूरज उगने की प्रतीक्षा में।

2. नदी आदमखोर हो गई है

दादी सुनाती थी-
किस्सा
.....लगातार बारिश होने पर

बाढ़ पहले भी आती थी
किसी-किसी साल

चढ़ता था पानी
बित्ता-बित्ता
जैसे कोई शिशु बढ़ता हो धीरे-धीरे

नहीं होती थी
जानमाल की हानि

समय रहते शरण लेते थे लोग
किसी मचान पर
या चले जाते थे
गाँव के किसी ऊँचे मकान पर

नदी का क्रोध
होता था जब शांत
उतर जाता था पानी
आहिस्ता-आहिस्ता
जैसे था चढ़ता

कहती थी दादी-
जिस साल आती थी बाढ़
उस वर्ष फसल होती थी दुगनी

बाढ़ जितना लेती थी
उससे कहीं ज्यादा लौटा देती थी

अब कहती है माँ-
जब से नदी पर बना है बाँध
तब से नदी
सुंदरवन के बाघ की तरह
आदमखोर हो गई है

रात-बेरात दबे पाँव

अचानक करती है भयानक हमला
खा जाती है-जान माल को
और दे जाती है टीस- अपनों से बिछुड़ने
का
जीवन भर के लिए ।

3. समानता

जन्म लेने दिया
अपने अंदर
एक स्त्री को
और बन गया सखी
अपनी प्रिया का

करने लगी है अब
वह साझा
हर्ष विषाद
उपलब्धियाँ कमजोरियाँ
यहाँ तक कि छोटी-छोटी बातें
रसोई से सेज तक की

अपने हाथों से बनाकर
सुबह की चाय
भर देता हूँ उसे और खुद भी
प्यार की असमाप्त ऊर्जा से
ओर जुट जाते हैं हम
सुबह-सुबह
घर की कामों में जल्दी-जल्दी

वह चढ़ा देती है
चूल्हे पर कड़ाही
मैं झाल देता हूँ
उसमें तेल
वह झाल देती है
पांचफोरन और मेरे पसंद की सब्जियाँ

मैं झाल देता हूँ
थोड़ी-सी हल्दी
जीवन को रंगने के लिए
थोड़ा-सा नमक
जीवन में स्वाद घोलने के लिए
और सीझने देता हूँ
सब्जी को
प्यार की मद्धिम आँच

इसी तरह मिलजुलकर
बना लेते हैं हम
दाल, चावल, रोटियाँ

और निकल पड़ते हैं
अपने-अपने कामों पर

उसने भी जन्म लेने दिया है-
एक पुष्प अपने अंदर।

4. पेड़

जब हम
अपनी हवस में
विकास के प्रतिमान हासिल करने के लिए
हवा में घोल रहे होते हैं -
ज़हर
तब वह दिन में

नीलकंठ की तरह
चूस रहा होता है-
विष
ताकि हम बचे रह सकें-
जहरीली हवाओं से

इतना ही नहीं
सूरज के सहयोग से
पृथ्वी के सभी प्राणियों के लिए
वह उत्साह से बना रहा होता है-
भोजन

रात को वह
थककर चूर सो जाता है-
मजूर किसान
किरानी चपरासी अध्यापक और
दुनिया में हर नेक काम करने वाले
भले मानुषों के साथ
गहरी नींद में

तब सिर्फ
लूटेरे और षड्यंत्रकारी
पृथ्वी के विरुद्ध
साजिश कर रहे होते हैं-
पेड़ काटने की।

। परिचय।

नाम- राज्यवर्द्धन, जन्म- 14 जुलाई 1960 (जमालपुर, बिहार)
रचनाएं प्रकाशित- हिंदुस्तान के चर्चित पत्र पत्रिकाओं में फीचर्स, लेख, अग्रलेख, रिपोर्ताज,
समीक्षाएं व कविताएँ प्रकाशित।, संपादन - स्वर-एकादश, विचार पत्रिका के सम्पादक-मंडल
में (पत्रिका बंद है।) स्तम्भ लेखन - जनसत्ता (कोलकाता संस्करण), 'नवभारत टाइम्स'
(पटना संस्करण), 'दैनिक जागरण' (कोलकाता), प्रभात खबर (कोलकाता)।, कविता संग्रह -
कबीर अब रात में नहीं रोता (प्रकाशाधीन)
संपर्क - राज्यवर्द्धन, एकता हाईट्स, ब्लॉक-2/11 ई, 56-राजा एस.सी.मल्लिक रोड, कोलकाता-
700032, Mobile no. 8777806852, e-mail:rajyabardhan123@gmail.com

पाँच कविताएँ शंभुनाथ

भूलने के बारे में

वे एक दिन चर्चा करेंगे इसपर
कि हम भूल गए थे
और खोजते फिर रहे थे
भूलने के नए-नए रास्ते
मसलन हम भूल गए थे
ट्रेन के सफर में
सह-यात्रियों के साथ बाँटकर खाना
भूल गए थे
प्रेम से रहना
पहाड़ा भूल गए थे
हम कर रहे थे बर्बरों का अभिनंदन
क्योंकि कुछ भूल गए थे

नदी जब भूलती है कि वह नदी है
वह अपवित्र बाढ़ होती है
इसी तरह सब भूलते गए कुछ न कुछ
कप भूल गए प्याले को
मंदिर देवकथनों को
और चाकू सब्जियों को
संसद है ही सबसे बड़ी जगह
भूलने की
बल्कि भूलना एक कला है

वे एक दिन चर्चा करेंगे इसपर
हर महान व्यक्ति को भूल जाने के बाद
होता था उसकी विशाल मूर्ति का अनावरण
भूलने का एक सिलसिला था
धर्म का अर्थ भूलने का
स्वतंत्रता का अर्थ भूलने का
देश का अर्थ भूलने का

शहर का पुराना नाम भूलने का
पेड़, पौधों और कवियों के नाम
पहले ही भुलाए जा चुके थे

हम भूल गए थे खुद अपना घर
कोने में पड़ा सिलबट्टा
बच्चों की हँसी
हम भूल गए थे कि
चिड़ियों के घोंसले से
चूजे हमेशा आसमान की ओर देखते हैं
और पत्थर पर जमती है दूब
वे एक दिन चर्चा करेंगे इसपर
कि हम यह भी भूल गए थे कि
कई लोग याद रखते हैं!

अंतिम प्रार्थना

मुझे थोड़ी सी विस्मृति देना
ताकि उनसे मिल सकूँ
जिनसे कभी टेबुल अलग हो गई थी

वह पागलपन लौटा देना
जो मीरा के बजते घुंघरूओं में था
है अब भीड़ की लाल आँखों में

थोड़ी अबोधता देना बच्चों वाली
दम घुट रहा है
ज्ञान के इस बाजार में

क्या थोड़ी सी याददास्त दे सकोगे
जो खो चुकी है
इतिहास के नए जंगल में

कहीं ज्यादा तो नहीं माँग रहा हूँ

बस अपने छाते से बड़ा हो मेरा आसमान
और देख सकूँ अपनी नाक से दूर।

देश है जब चेहरों में

चेहरे की तलाश है हर तरफ
वह लाया जाता है उठाकर
इतिहास से या कबाड़ से
हर जगह आदमी बदल रहा है चेहरे में
चेहरा ही है अब विचार
चेहरा ही है अब हथियार
कुछ नहीं है आदमी यदि है सिर्फ आदमी
एक चेहरा जरूरी है
झाँकते हैं हर चेहरे से अब
अतीत की गुफाओं से निकले प्रेत
एक नहीं कई-कई अभिशप्त प्रेत हैं
जो बंद किए जा चुके थे संदूकों में
आए हैं इस बार सुंदर वस्त्रों में।

वे सभी लोग इतिहास में गाड़े जा चुके हैं
जो चेहरा न बन सके
देवमूर्ति भी है अब धर्म के बाहर केवल चेहरा
चेहरा है ताकत की भाषा
आदमी बंद हो रहा है चेहरों में
राजनीतिज्ञ तय कर रहे हैं
कौन बनेगा चेहरा किस जाति का
कौन बनेगा मोहरा किस भीड़ का
जो हैं बड़े-बड़े कॉरपोरेट बाघ
उनके चुनने के लिए है
चेहरों में एक मानवीय चेहरा
अब बाजार में यह भी लोकप्रिय है।

चेहरों के बाहर रहता है देश
देश है इन दिनों देशनिकाले पर

जैसे महापुरुषों की मूर्ति से बहिष्कृत हैं विचार
जैसे संगीत से उड़ चुकी है वह चिड़िया
जिसमें सभी चिड़ियों के पंख रहे हैं सिंफनी-से
अपने लिए सोचने के आगे
जीवन में अब मद्धिम हो गई है
सभी को साथ लेकर जीने की भूख
नहीं सुनाई देती दूसरे की आवाज
कान हो गए हैं नीरव दीवार
यह अचानक क्या हुआ
कि वह एक चेहरा है और खुद गायब है
एक बंजर आत्मा रखकर।

फिर भी कहीं तो है देश
देश है प्रेतों के शोर से दूर
झरनों की कल-कल में
जंगल के तूफानों की सन-सन में
देश है
खिए हुए सैकड़ों फूलों में
देश है
रोजगार के लिए दौड़ते नौजवानों की थकान
में
किसानों की आशंकाओं में
दुकानदारों की घबराहटों में
देश है
शहर की सड़कों पर
जहाँ लोग बेचैन हैं नकली चेहरों के भीतर।

देश जब कहीं बचा नहीं होता
वह मौजूद रहता है
चेहरा बनने की हिंसा से दूर
बच्चों की नींद में स्वप्न बनकर
ऐसे स्वप्न होते हैं दावानल

वे बनते हैं प्रेम का पवित्र सुर
नफरत की तोप के सामने।

कॉरपोरेट शरण गच्छामि

देश से कहीं और जा रहा था देश
कहते हुए—मुझे याद मत रखना।
इतिहास आतंकित था प्राचीन धरोहरों में
सौदागर कर रहे थे इनकी नाप-जोख
खिलाड़ी अभी-अभी लौटे थे ओलंपिक से
स्टेडियम में उनके लिए झाँक रही थी
घास से मिट्टी आखिरी बार
आसमान के नीले रंग में मची थी उथलपुथल
पता नहीं कहाँ निकल रहे थे टैंडर
पता नहीं कैसे हो रहा था मोलभाव
मूर्तियों से प्रस्थान कर रहे थे महापुरुष
कहते हुए—मुझे याद मत रखना।

अब ट्रेनों पर नहीं लिखा था—
यह जनता की संपत्ति है
हवाईपट्टियाँ जा चुकी थीं उनके पास
नदियाँ हो चुकी थीं नीलाम
उदास थीं मछलियाँ उदास थीं नावें
पेड़ों पर बैठने के लिए
अब चिड़ियों को लेना था कूपन
झरना अब सिर्फ बोतल में दिख सकता था
बड़े गोदामों के भीतर था सारा अन्न
बाहर कृषक विपन्न
गैस पर पकती रोटियों तक थी उनकी पहुँच
छोटी होती जा रही थी रोटियाँ
देशवासियों को खरंजा सौंपकर
हाई वे सड़कें कर दी गई थीं उनके नाम
पाताल था उनके निशाने पर
पहाड़ों को अलविदा कर रहे थे खनिज

कहते हुए—मुझे याद मत रखना।

खुल रही थी सामने एक नई दुनिया
अब आरती के साथ चल रहा था मंत्रोच्चार—
कॉरपोरेट शरण गच्छामि
वे बन चुके थे पुण्यार्थी महादानी
सामने थे करोड़ों कटोरे
अब सबकुछ कॉरपोरेट था
मुस्कराहट हो चुकी थी कॉरपोरेट
उसमें हँसना शामिल नहीं था
आम लोग देश की ऐसी निधि थे
जिसमें भविष्य शामिल नहीं था
लंच कॉरपोरेट था
जिसमें नमक था उनके स्वाद के अनुसार
लोग बोल सकते थे सिर्फ वे शब्द
जो कंपनियों के शब्दकोश में थे
प्रेम कॉरपोरेट था
जिसमें थी एक निस्संग सह-यात्रा
देशप्रेम भी होता गया कॉरपोरेट
उसमें स्वदेश जरूरी न था
कबाड़ की तरह
जा रहे थे ट्रकों पर बहुत से स्वप्न
सिर्फ भूलने की स्पर्धा थी
देश से कहीं और जा रहा था देश
कहते हुए— मुझे याद मत रखना।

हम बचे होते हैं

हम बचे होते हैं
जैसे नदियाँ बची होती हैं बाढ़ में
तूफान में बचे होते हैं पेड़
और पहाड़ भी भू-स्खलन के बावजूद
हम बचे होते हैं समुद्र में नमक की तरह
और कहीं नहीं तो अपने पसीने में

हम बचे होते हैं जब वर्तमान से नहीं भागते
नहीं गढ़ते कोई काल्पनिक शत्रु

हम बचे होते हैं
जब बच्चे पूछ बैठते हैं-
कोरोना की गेंद में इतने काँटे क्यों हैं
हम बचे होते हैं
जब नाशते के बाद साफ कर लेते हैं बर्तन
जब वीडियो पुकार पर हँसते अपनी कैद पर
और पूछते हैं दूसरों की खैरियत
हम बचे होते हैं
जब सोने के पहले सुन लेते हैं अपनी आवाज

हम बचे होते हैं
जब भय को समझते दंड
अस्तित्व को प्रेम का तोहफा
सत्ता को आत्मविस्मृति
और जंगलों खेतों सड़कों ग्लेशियर तारों को
अपनी आत्मा के अंग
हम बचे होते हैं
जब परखते कभी-कभी अपनी ही कारगुजारी

हम बचे होते हैं
क्योंकि हमारा बचा होना जरूरी है
इस गोल पृथ्वी के सुंदर दिखने के लिए!

संपर्क : 90077-57887

पाँच कविताएँ मृत्युंजय

एक

नदी में मछलियाँ
नहीं उछल रही
समुद्र में लहरें
नहीं उठ रही

चाय के कप में
तूफान नहीं उठ रहा
पानी में बुलबुला
भी नहीं बन रहा

समय इतना बुरा
कि समय नहीं कट रहा
मन अजर ऐसा जर हुआ
कि मन नहीं कर रहा
खाना जहर जहर
खाया नहीं जा रहा
शहर में हाहाकार
रहा नहीं जा रहा
देश में महात्रास
सहा नहीं जा रहा

धूप निकलती है
ताप नहीं
हवा चलती है
अहसास नहीं
साँस चलती है
प्राण नहीं

सन्नाटा है
हर कहीं

कैद हैं
हम सभी
खौफ है
मौत है
रास्ता नहीं
मुक्ति नहीं ।

दो

तुम चलो
मैं आता हूँ
तुम लड़ो
मैं आता हूँ
ऐसा भी कहने वाला
अब कोई नहीं

ऐसा कोई नेता नहीं
ऐसा कोई त्राता नहीं
मजदूर बेचारा ?
बेहाल
हुक्काम का हलाल
बिना किसी मलाल
ऐसा कोई नहीं
पूछ सके जो सवाल

ऐसा कोई झंडा नहीं
ऐसा कोई कंधा नहीं
जो कहे
साथ चलो
मैं आगे आगे चलता हूँ

सब खुले बाजार
के बंदे हैं
धंधे के परिंदे हैं
गले के फंदे हैं

गंदे हैं गंदे हैं

तीन

चाय चूल्हे पर
पकती है
मजदूर सड़क पर
तपते हैं

चाय पकती थी
सड़क के जिन चूल्हों पर
उस पर ठंडी राख पड़ी है

मजदूर खटते थे
कारखानों की जिन मशीनों पर
उन पर छिपकली गिरी मरी है

भात पकता था
सड़क किनारे जिन होटलों में
वहाँ कुत्ते बेजान पड़े हैं

मजदूर काटते थे
धान खेतों में जिन हँसियों से
वे उदास पड़ी हैं

सैलानी पहुँचते थे
पर्वत के जिन टीलों पर
वे सब सूने सूने हैं

मजदूर बनाते थे
पहाड़ों पर जिन सड़कों को
वे सब बंद पड़ी हैं

घर पलते थे
मजदूरों के हाड़तोड़ से

अब थाली औंधी हैं

मजदूर फँसे पड़े हैं
गाँव शहर के सीमाने पर
कोरोना के काँटों में

उनके घर घर में
भूख खुली खड़ी है
मौत से जंग छिड़ी है
हर चौराहे पर

चार

तुम पैदल चल रहे हो
पाँव पत्थर हो गए हैं
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारा मजबूत इरादा है

तुम भूखे घिसट रहे हो
कंधे पर बच्चे लिए
प्यास से गला छिल गया है
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारी संकल्प शक्ति है

स्मार्ट सिटी ने तुम्हें नहीं दी ठौर
इसका रंज नहीं है तुमको
शहर को शहर बनाने में
निचोड़ दिया था अपने को
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारी राष्ट्रभक्ति है

तुम चल रहे हो
चले जा रहे हो
गाड़ी दौड़ रही है
तुम्हें कुचल रही है

ट्रक ऊपर से गुजर रहा
तुम उफ तक नहीं कर रहे
तुम पानी तक नहीं माँग रहे
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारा फौजी जज्बा है

जब भी तुमसे माँगा
जहाँ भी माँगा
अमदाबाद में माँगा
बनारस में माँगा या फिर
माँगा यमुना किनारे
कलेजा निकाल कर दिया तुमने
जब भी तुमसे माँगा
जत्था बना के दिया तुमने
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारी निष्ठा है

तुम जत्था के जत्था सो गए
रेल की पटरियों पर
अनाज से भरी माल गाड़ी ने
काट डाली तुम्हारी बोटी बोटी
न तुम चीखे न किसी ने चीख सुनी
अहसास है हमको खूब
यह तुम्हारा बलिदान है

वे लोग झूठे हैं
एक सिरे से कलाबाज हैं
जो बता रहे हैं
कि खाखरा थे तुम्हारे बैग में
बिछा कर दिखा रहे हैं
सूखी रोटियाँ रेल पटरी पर
मुझे पता है
नहीं थीं तुम्हारे बैग में सूखी रोटियाँ
जो थीं वे थीं फटी हुई नसें
अहसास है हमको खूब

बन रही थी वह बम

वह बुद्ध पूर्णिमा की रात थी
तारीख मई सात थी
आसमान में सोने की परात थी
धरती पर मैं और मेरी सरकार थी
चाँद के साथ चेस चल रहा था
तभी तुमने भेजी चाँद की तस्वीर
लिखा था तुमने
चाँद तमतमाया हुआ है
गुस्से में लाल हुआ है , चेक

सरकार कभी कुछ भूलती नहीं
याद आए
कभी किसी ने लिखा था पहले भी
चाँद का मुँह टेढ़ा है
यह याद आना था
कि सभी लाल बत्तियाँ बंद कर दी गईं
हर सिग्नल पर हरी कर दी गईं

शिकारी मालगाड़ी
शिकार पर निकल गईं
खैर छोड़ो
रात गई बात गई

पाँच

दूर रहो
मजदूर हो
लड़ मरो
मजदूर हो
मर खपो
मजदूर हो
घर छोड़ो
मजदूर हो

सड़क छोड़ो
मजदूर हो
शहर छोड़ो
मजदूर हो
झंडा उठाओ
मजदूर हो
चंदा दो
मजदूर हो
चुप रहो
मजदूर हो
डंडा खाओ
मजदूर हो
रोटी ?
भूल जाओ
मजदूर हो
नींद ?
भूल जाओ
मजदूर हो
बकाया ?
भूल जाओ
मजदूर हो
गाँव ?
भूल जाओ
मजदूर हो
गैरत ?
दफन करो
मजदूर हो

संपर्क : 94330-76174

रोटी : तीन कविताएँ विमल किशोर

एक

औरत रोटी सेंकती है
उसे आकार देती है
रेखागणित के गणित में वह उलझती है
वृत्ताकार देने में
स्वयं अनावृत हो जाती है

वह सोचती है
रोटी अपने सांचे में ढले
गोल-गोल हो
सिकी हो
पूरी पकी हो
खाने वाले की संतुष्टि मिले

ऐसी ही रोटी
बनाने और गढ़ने में
बीत रही है उसकी उम्र

भूख आती है
रोटी पर झपटती है
तृप्त होकर जाती है

कोई प्रतिक्रिया नहीं
उसकी कला का कोई पारखी नहीं
मीठे दो शब्द नहीं
हमदर्दी नहीं
जैसे यही उसकी लाइफ लाइन है
उसकी नियति है।

दो

औरत जानती है कि
आटा गुंथने के लिए
कितना चाहिए पानी
यह संतुलन जरूरी है

रोटी बेलने के लिए
और बनाने के लिए

औरत के लिए रोटी बनाना
सिर्फ रोटी बनाना नहीं है
कहा भी जाता है कि
रोटी और पानी का सम्बन्ध
रिश्तों में मिठास लाता है
ऐसे ही आटा और पानी के बीच
स्नेह और ममता का घोल

वह झेलती है
चूल्हें का ताप
झुलसा देने वाली गर्मी
सब झेलती है
उफ नहीं करती
यह भी कैसा यथार्थ कि
जिंदगी में मिठास बना रहे
ऐसा सोचते और करते
वह कभी नहीं सोच पाती
कि उसकी अपनी जिंदगी में
कितनी गड्डुवाहट भरी जा रही है

कब होगा उसे उस बात का अहसास?

तीन

खाए-अघाए लोगों के लिए
रोटी का क्या मोल?
उन्हें तो धिन आती है पसीने से
जिससे बनती है यह रोटी

यह रोटी भी अजीब चीज है
कोई भरे पेट अघाता है
तो कोई इसकी चाह में
भूखे पेट सो जाता है

लोगों की उम्र बीत जाती है
रोटी के जुगाड़ में
नहीं मिल पाता उन्हें
अपने श्रम की कीमत

खेतों में जो खटते हैं
पैदा करते हैं सबसे पौष्टिक दाने
उन्हीं के बच्चे कुपोषण के शिकार होते हैं
असमय ही मरते हैं, मारे जाते हैं

औरतें जो होटलों और ढाबों पर
रोटी बनाती है
उसे आकार देती है
मालिक का पेट भरती है
उनके हिस्से क्या आता है?
झिड़की, धमकी, गाली
उनका औरत होना कहीं खो जाता है।

परंपरा

परंपरा की बात
अक्सर करते हैं हम
इनमें जीना और मरना
नियति बन गई है हमारी
और इनके बीच जीते हुए
खुश हो लेते हैं हम

हम बंधे हैं
या बाँध दिए गए हैं
सिर पे पाँव तक
जंजीरों में
आभूषण नाम दिया गया है
और इसके साथ
थोपी गई है एक विचाराधारा
सदियों से जिसने निगल लिया है वजूद
व्यक्तित्व हमारा

परम्पराओं को तोड़ना
खतरों से खेलना है
हम नहीं बन सकते
या नहीं बनने दिया जा सकता हैं हमें
खतरों का खिलाड़ी

हम जानते हैं
और अडिग रहते हैं
मगर परंपराओं के पालन में
और पड़े रहते हैं
उसकी विचारधारा की जद में
तब पीछे छूटता जाएगा
और कुछ नहीं बचेगा
पछतावे के सिवा

ये जंजीरें पुरानी है
जंग लगी है
इन्हें तोड़ देना हमारी जरूरत है
हमें निकलना होगा बाहर
बढ़ना होगा
चलना होगा
तलाशना होगा नया रास्ता
लाना होगा विचारों में नयापन
इसी से मिलेगी ऊर्जा
ताजगी का होगा हममें नया संचार

मुक्तिबोध के शब्दों में
अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे गढ़ और मठ सब

हमें भी खेलना होगा खतरों से
बनना होगा खतरों का खिलाड़ी
तभी मिलेगा
व्यक्तित्व को नया उभार
नई पहचान और नया आयाम।

संपर्क : एफ-3144, राजाजीपुरम, लखनऊ-226017, मो. : 879578805

गजल
अभय शुक्ला

1.

जो हैं तूफ़ानों में, साहिल जानते हैं,
भटकने वाले मंज़िल जानते हैं।

हमारा हल नहीं मिलता किसी को,
हमें सब अपनी मुश्किल जानते हैं।

जरूरत के मुताबिक सीने में हम,
कभी पत्थर कभी दिल जानते हैं।

झुके कंधे को कमज़ोरी न समझो,
क्या हिम्मत है, वो बुज़दिल जानते हैं।

गरीबी और खुदगरी से बढ़ कर,
नहीं कोई मुक़ाबिल, जानते हैं।

हँसी आती है पल दो पल अभी भी,
अभी कुछ कम मसाइल जानते हैं।

2.

हमारे लफ़्ज़ों में जो असर है, तिरा असर है,
सो यह जो महफिल में सर बसर है, तिरा असर है।

जो कहकशाँ का सफर रहा था तिरा करम था,
सो यह जो दुश्वार रहगुज़र है, तिरा असर है।

फ़कत वबा ने नहीं उजाड़े हैं यह सभी घर,
ये सेहरा हाकिम तिरा भी सर है, तिरा असर है।

असर है किस की छुआन का लहरें उछल रही हैं,
नदी किनारे तिरा ही घर है, तिरा असर है।

मिरे लगाए सभी शजर सब्ज़ हैं अभी तक,
मिरा हर इक ज़ख़्म ताज़ा तर है, तिरा असर है।

मैं वाइज़ों की मुसीबतों को समझ रहा हूँ,
जो दीन खो ने का इन में डर है, तिरा असर है।

3.

उतरना पार था मुश्किल हमारा,
ज़रा नाराज़ था साहिल हमारा।

हमारी माँ के गहनों से बना है,
चमकता क्यूँ न मुस्तक़बिल हमारा।

बहुत आवाज़ मत करना लगे पर,
बड़ा हस्सास है क्रातिल हमारा।

दुखी हैं बात रखने को तुम्हारी,
कहाँ टूटा बिछड़ कर दिल हमारा।

मसीहाओं से क्या तकलीफ़ थी ये,
कभी समझा नहीं क्रातिल हमारा।

4.

निकाल अपने से बाहर ऐ मेरे यार मुझे,
न पैरहन सा यूँ खुद पर पहन उतार मुझे।

मैं दुख हूँ और मैं पत्थर पे भी उग आता हूँ,
जगह बनाने को काफी है इक दरार मुझे।

मैं तेरे साथ हूँ मेरा गुमान क़ायम रख,
मिरे बगल में खड़े हो के मत पुकार मुझे।

कम अज़ कम अक्स दिखाता था मुझ को औरों का,
अब आइना भी दिखाता है आर पार मुझे।

ये ज़िंदगी के सफर की नहीं टिकट मुझ पर,
ये बस तू चाहे जहाँ ले जा पर उतार मुझे।

वो एक झूठ में जीते हैं और चाहते हैं,
कि मैं भी मान लूँ, उन से बहुत है प्यार मुझे।

मुझे मिले हो न जाने ये किस तरीके से तुम,
तुम्हारे खोने का डर ही नहीं है यार मुझे।

गुज़िश्ता वक्त मिले गर कभी कहीं तो मैं,
ये पूँछ लूँगा कि 'हम' दोगे क्या उधार मुझे।

न जाने कैसी कशिश थी मिरे ज़वाल में जो,
ठिठक के देखता रहता था आबशार मुझे।

जहाँ लगा की ये सब से हसीन दुख है वहीं,
हसीन-तर किसी दुख ने कहाँ, निहार मुझे।

5.

नई मुश्किल पुरानी की दवाई हो गई मालिक,
तबीयत आप के आने से अच्छी हो गई मालिक।

बुरे सपने ही आते थे पुराने हादसों से पर,
जो खुशियाँ आप ने दी, नींद आधी हो गई मालिक।

ये अच्छी नस्ल का घोड़ा है लेकिन थक गया
यानी,
समय के साथ इस की दौड़ लंबी हो गई मालिक।

मनोरंजन की खातिर रब ने की तामीर यह दुनिया,
बची है कितनी पक्कर, और कितनी हो गई
मालिक।

अगर मुश्किल पे मुश्किल सोचनी है तो ज़रा
सोचो,
दलित-मुस्लिम घराने में जो बच्ची हो गई मालिक।

जहाँ निन्यानवे पर होते हो, उस लेता है कोई,
तुम्हारी ज़िंदगी तो साँप सीढ़ी हो गई मालिक।

मिरा ज़िम्मा है अब तुम पर, खुदा हिम्मत तुम्हें
बरूँ,
मिरी सब हसरतों की तुम से शादी हो गई मालिक।

न दी जाए, न ली जाए, है उल्फ़त फिर भला वो
क्या,
जरूरत है कि इक लड़की जरूरी हो गई मालिक।

नए लोगों को कम तनख़्वाह पर रखते हैं मालिक
अब,
वफ़ादारी की क्रीमत कितनी सस्ती हो गई मालिक।

अधिक मेहनत का फल मीठा भी उतना जान
पड़ता है,
मिठास अब आप की बातों की हल्की हो गई
मालिक।

जब अंदर से थे रौशन लोग, दीवाली भी रौशन
थी,
धुएँ और शोर का मतलब दिवाली हो गई मालिक।

ग़रीबी के जो हालात आप ने देखे सुने हैं बस,
हमारी उम्र उन की ही दुहाई हो गई मालिक।

है पर दरकार रिंदों को परिंदों में बदलने को,
बची हर शर्त इक प्याले में पूरी हो गई मालिक।

मैं चुप था, आप भी खुश थे, मरासिम चल रहा
था, पर,
मुझे उकसा के बुलवाया, तसल्ली हो गई मालिक?

6.

लक़ब को देख के लहजा नहीं बदलते हैं,
हम आँख देख के चेहरा नहीं बदलते हैं।

वरना हम तो बदल देते आदतें अपनी,
तुम्हें पसंद हैं, अच्छा! नहीं बदलते हैं।

समय पड़े पे बदल देते हैं उसूले जहाँ,
पर अपनी आँख का सपना नहीं बदलते हैं।

हमारे काँधे पे नाकामियों का बोझ नहीं,
हम इश्क़ करते हैं, दुनिया नहीं बदलते हैं।

ग़लत सही हो जैसा हो चुन लिया गर तो,
हो चाहे रब्त या कपड़ा नहीं बदलते हैं।

कभी रक़ीब से करते हैं और कभी हम से,
वो लोग बदले हैं, धोखा नहीं बदलते हैं।

तुम्हारा देखना भाए न गर किसी को तो,
नजर बदलते हैं चश्मा नहीं बदलते हैं।

उड़ा ले जाए हवा तब भी लौट आते हैं,
हम ऐसी रेत जो सहारा नहीं बदलते हैं।

गिना रहा था मिरी ग़लतियाँ पर अब खुश है,
ज़रा सी देर में इतना नहीं बदलते हैं।

जो बाज़ दफ़्फ़ा ज़रूरत बदल की हो उस को,
हम इश्क़ बोल के जज्बा नहीं बदलते हैं।

वफ़ा वो थी कि जो हिजरत का सोचता था मैं,
तो प्यास कहती थी, 'सहरा नहीं बदलते हैं'।

ये इतिहास परिदों का है जहाँ बैठें,
शजर शजर हैं, परिदा नहीं बदलते हैं।

संपर्क : भोपाल, मध्यप्रदेश, मो. : 7987860730

धब्बे और सेमिनार

सिद्धेश

सुबह से परेश अन्यमनस्क, तंग-मिजाज और परेशान था। उसे बैंक के काम से भी जाना था। इसलिए उसने छुट्टी ले ली। शाम को चार बजे एक सम्मेलन में जाने का मौका मिला था। देश के विभिन्न शहरों से लोग आने वाले थे। साहित्य जगत के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का जमावड़ा था। संपादक, पत्रकार, रचनाकार, संस्थाओं के निदेशक, उपप्रधान सभी आने वाले थे। स्थानीय तो थे ही। परिषद के सभाकक्ष में आमन्त्रित लोगों में परेश भी था। बल्कि उसे पर्यवेक्षक के रूप में सम्मान दिया गया था।

उस समय दोपहर को जब वह बैंक से निकला बारह बज रहे थे। सोचा कि बीच का समय अपनी विवाहित बेटी के घर जाकर आराम कर ले।

वह फुटपाथ से गुजर रहा था कि अचानक एक उखड़े हुए प्लास्टर पर ठोकर लगी। वह अन्यमनस्क तो था ही। अपने को संभाल पाता कि वह वहीं फुटपाथ पर मुँह के बल गिरा। जोर की आवाज हुई थी। आँखों के आगे अन्धेरा हो गया। परेश को लगा कि मुँह के बल गिरने से माथे पर गहरी चोट आई है। उसने ऊँगली से ललाट के अग्रभाग पर छूने की कोशिश की। वह दर्द से कराह उठा। जबतक वह उठे, तब तक फुटपाथ पर अस्थायी डेरा डालने वाले लोगों में से किसी ने उसे उठा कर वहीं ऊँची जगह पर बिठाया और पानी की बोतल से पानी से उसके सिर को धोया और आराम करने के लिए कहा।

परेश ने कहा, “नहीं, ठीक हूँ। चला जाऊँगा।” उसने फिर से चोट की जगह पर टटोला तो उसे लगा कि चमड़े के छिल जाने से खून निकल आए है। अब वह क्या करे? सोचा कि बेटी के घर जाकर कुछ और बहाने बनाएगा। हो सकता है बेटी उसे चार बजे सम्मेलन में जाने न दे। चोट की जगह उसे पीड़ा हो रही थी। शायद खून भी गिरता है, यही सोचकर वह सीधे, पास के डिस्पेंसरी में गया। लोग उसे देखकर सकते में आ गया।

‘क्या हुआ था। कैसे हुआ?’

‘कुछ नहीं, बस से उतरते हुए धक्का लगा था। कोई मलहम और दवा दे दीजिए जिससे पीड़ा कम हो।’ कंपाउंडर ने चोट वाली जगह पर महलम लगाकर कहा, दवा की जरूरत नहीं है। इसी से ठीक हो गया।’

‘कम से कम पट्टी तो लगा दीजिए। सूखने में सुविधा होगी।’

- परेश वहाँ से निकला, तब दोपहर बीत रही थी। चार बजने में दो-तीन घंटे की देर थी।

बेटी के घर पहुँचकर परेश सीधे बाथरूम में चला गया। आइने के सामने खड़ा होकर चोट के निशान देखने लगा। वह जगह खून के रिसने से लाल हो गया था।

बेटी ने देखते ही पूछा, ‘अरे, यह चोट के निशान, कहीं गिर गए थे?’

‘बस से उतरते समय रगड़ गया होगा। दवा लगा दी है, ठीक हो जाएगा।’

‘आराम करो।’

‘खून तो बह रहा है?’

‘नहीं, धब्बे पड़ गए हैं।’

‘कुछ खाओगे? या खाकर आए हो?’

‘एक गिलास पानी दे दो। मुझे घंटे भर में निकलना है।’

‘ऐसी अवस्था में कहाँ जाओगे?’

‘जाना जरूरी है।’

‘लोग देखकर क्या कहेंगे?’

‘मैं लोगों के निकट जाऊँगा ही नहीं।’

‘वहाँ आज क्या है?’ बेटी ने प्रश्न दोहराया।

‘कहा न, सेमिनार है। बाहर के लोग आएँगे। अधिकतर बड़े-बड़े रचनाकार हैं। उनका साथ बड़ी अहमियत रखता है। कई लोगों से पहली बार मिलूँगा। लेकिन समस्या तो यह है कि मिलूँगा तो लोग पूछेंगे, यह धब्बा कैसा?’

‘इसीलिए तो कहती हूँ, मत जाओ। कोई बहाना बना देना।’

‘मुझे खासतौर पर पर्यवेक्षक के रूप में बुलाया गया है। नहीं जाऊँगा तो मुझे परिषद वाले ढूँढ़ेंगे।’

‘ठीक है, अभी तो समय है, आराम करो।’

निकलने के पहले परेश ने आइने के सामने खड़े होकर अपने को निहारा तो लगा कि खून का रिसाव तो नहीं है, उसकी जगह धब्बा रह गया है, जो काला पड़ गया है। दर्द भी कमा है। वह तैयार होने लगा।

सभा कक्ष में पहुँचा तब तक मंच पर कई पुराने चेहरे नजर आए। वह एक किनारे बेंच पर बैठ गया। उस जगह तोड़ा अन्धेरा था। वह आस्वस्त हुआ।

कार्यक्रम आरम्भ होने के पहले फोटो सेशन होने वाला था। पुराने लोग कुर्सियों पर बैठे थे। नए रचनाकार उनके पीछे कतार में खड़े थे। मंच से हठात परेश का नाम लेकर बुलाया जा रहा था।

‘परेश जी, आप मंच पर आ जाइए।’

कुर्सी से वह उठकर जाना नहीं चाहता था कि पीछे से एक मित्र ने कहा, जाओ परेश, तुम्हें बुलाया जा रहा है।

वह अन्धेरे में उठा और बिना किसी तरफ ताककर मंच की रौशनी में आ गया। उसे लगा अब उसकी कलाई खुलने वाली है। वह चुपचाप एक किनारे जाकर खड़ा हो गया। लोगों ने उसे देखा मगर किसी ने गौर नहीं किया कि उसके चेहरे पर चोट के धब्बे हैं।

पास में खड़े एक ने पूछा ‘आप?’

परेश हठात घबड़ा कर उनकी तरफ देखा, तत्क्षण सिर झुकाकर कहा, ‘जी, मैं ही परेश हूँ। और आप?’

‘मैं अकादेमी की तरफ से आए हूँ। आपको पढ़ा है। आप अनुवाद भी अच्छा कर लेते हैं। अकादेमी से ही कई अनूदित पुस्तकें आ चुकी हैं।’

‘जी, धन्यवाद।’ परेश ने अपना चेहरा दूसरी तरफ कर लिया। उसे लगा कि अगर वह इसी तरह उनकी ओर ताकता रहा तो चेहरे पर उभर आए धब्बे को छिपा नहीं पायेगा। इसके बारे में पूछेंगे।

फोटो सेशन के बाद वह आहिस्ते से लोगों से छिपता हुआ नीचे उतर आए। वह कार्यक्रम के अन्त तक यँ ही सभाकक्ष में चुपचाप बैठा रहा। उसने सोचा, आज तो जैसे-तैसे बीत गया, कल उसे मंच से बोलना था। मगर वह जानबूझ कर गया नहीं। सुना कि दूसरे दिन मंच से उसके नाम की घोषणा हुई थी। कई बार हुई थी।

जबकि पर्यवेक्षक के रूप में उसे सेमिनार के तीनों दिन रहना था।

परेश ने अपने दो पेज के रिपोर्ट में लिखा कि सम्मेलन सफल रहा। देश के विभिन्न शहरों से आए हुए रचनाकारों ने अपनी बातें सुस्पष्ट शब्दों में सामने रखीं। कहीं कोई विरोध की भाषा सुनने को नहीं मिली। लोग बड़ी शालीनता से पेश आए, एक दूसरे को सुनते रहे, किसी की ओर गौर से देखा तक नहीं।

संपर्क :

त्रिशूल का रक्षक सरिता खोवाला

“कमरे की खिड़कियों में हठात एक त्रिशूल सा कुछ महसूस हुआ। क्या वो मेरा कोरा भरम था या फिर सच में तुम ही थे मेरी रक्षा को हमेशा तत्पर। लेकिन मैंने अपनी खिड़कियों से जब झाँककर नीचे की ओर देखा तुम कहीं न थे, शायद कभी-कभी अदृश्य हो जाते थे मेरे लिये। मैंने फिर से जब वापस आकर खिड़कियों की ओर देखा फिर वही त्रिशूल... मैं असमंजस में खो सी गई और मेरी नजरों के समक्ष वो त्रिशूल बड़ा होता चला जा रहा था, मैं अपने पैरों में जकड़न महसूस कर रही थी और तभी वहाँ किसी के चीखने की आवाज आई, मैं उठना चाहती थी लेकिन मानो पैरों में जान ही न बाकी हो। तभी वो त्रिशूल छोटा होकर गायब हो गया और मैं उठ खड़ी हुई। लेकिन तबतक उसकी जीवनलीला समाप्त हो चुकी थी। मैं तो शायद उसे माफ भी कर देती लेकिन उस त्रिशूल को कैसे समझाती भला।”

‘हमारी रूही’ आधी नींद और पूरे बोतल के नशे में धूत जाने क्या क्या बके जा रही थी। बार-बार एक ही सपना, एक ही सपना ... उप्पफ!

शहर की भीड़ पर मन का बोझ हमेशा से भारी पड़ता रहा था। कभी सिगरेट के धुँए तले वो उस दर्द को हल्का करने की कोशिश करती रही तो कभी पूरी की पूरी बोतल गटककर। हमेशा से उसे लगता रहा था कि इससे बड़ा नर्क न हो सकता है लेकिन हमारी जिजीविषा बाकी सब बातों पर भारी पड़ती है और हम लादी हुई जिंदगी जीना सीख जाते हैं।

और बस रूही भी कभी शराब तो कभी संगीत में डुबी उन सबके बीच अपनी जिंदगी तलाश रही थी।

नशे में वो और खूबसूरत हो जाती थी, ऐसा उसके चाहने वाले कहाँ करते थे। चाहने वाले तो क्या? ...(आदमी को औरत में सबसे पहले तो देह ही दिखती है न?) उसके देह के खरीददार तो तकरीबन रोज ही उसके अङ्गे पर आ जाया करते लेकिन शायद नियति ने उसके लिए गलत नाम चुन लिया था। रूही की रूह तक पहुँच पाए ऐसा कोई बंदा न मिला था उसे।

मिलता भी कहाँ उसे?

...चरित्रहीना...जो ठहरी।

मायाबाई के अङ्गे की जान थी वो। उम्र ही कितनी थी भला उसकी? भले घरों की लड़कियाँ तो इस उम्र में रोटी तक बेलना न सीख पाती हैं और ये तो रोटी कमाना भी सीख चुकी थी। (चाहे कीमत बहुत बड़ी हो)

लम्बी देह पर बस उतना ही माँस दिखता था जितना जीरो फिगर होने के लिए चाहिए था। आँखों में कोई ख्वाब न था फिर भी आँखें चमक रही होती

थी खासकर अंधेरो में!

गुमनाम गलियों में रहते हुए भी गलियों की रौनक थी वो। लेकिन इन सब पर रूही को कभी नाज न था। उसे तो पता भी न था कि कैसे वो इन गलियों का हिस्सा बन गई। दूर-दूर तक दिमाग पर जोर डाल याद करने की कोशिश करती... शायद उसका कोई बचपन रहा होगा, घर रहा होगा, माँ, बाप, भाई, बहन... कोई तो जरूर ही रहा होगा।

लेकिन दिमाग जब थक जाता और कुछ याद न आता तो दो पैक दारू की गले में डाल बाकी का सबकुछ भी भूल जाना चाहती थी वो।

सर्दियों में जब हड्डी तोड़ने वाली ठंड कहर ढाती है तो उन गलियों में और भी सरदी बढ़ जाया करती थीं। तब रूही और उसकी सहेलियाँ गली के मुहाने पर बैठ सुबह-सुबह धूप सेंका करती थीं। हँसी-ठिठोली करती ये तितलियाँ से कम नजर न आती थीं। आंगंतुकों की एक नजर तो उनपर पड़ ही जाया करती थी।

सामने वो पानवाला ललचाये नजरों से ये सब देखा करता था और पान बनाते हुये अपनी भाषा में गाने गाया करता था। लेकिन गली तक आने का साहस कभी नहीं कर पाता था। सभ्य लोगों को दिन में उन गलियों में जाने में लज्जा महसूस होती है न इसीलिए।

वहीं गली के ठीक सामने चौदह बर्षीय राजेश समौसे तला करता था। गरीबी शायद हमें समय से पहले परिपक्व बना देती है? और इसीलिए वो भी बीच-बीच में गलियों के ओर एक नजर फेर ही लिया करता था वैसे वो सारी वीरंगनाएँ इस उभरते नौजवान को बच्चा ही समझती थीं इसीलिए इसके देखने का उनपर कोई असर भी न होता था। हाँ समोसा खाने बीच-बीच में सभी वहाँ आ जाया करती थीं और बातों-बातों में जब उसे भाई कह देती तो उसे थोड़ा बुरा भी लग

जाता था ... वो भी रूही के मुँह से। उम्र में दो चार बरस ही तो बड़ी थी उससे बस ...

बहुत बातूनी था वो समौसे वाला लड़का। समौसे के साथ अपनी रामकहानी का भी सबको भोग लगाया करता था और ये तितलियाँ भी कान खोलकर खड़ी हो जाया करती मानो टेलीविजन का लाईव टेलिकास्ट चल रहा हो।

“हमेशा से माँ कहती थी कि कितनी मन्नतों बाद उसका जन्म हुआ। उसकी ‘दीदी’ को तो बस पैदा होते ही ठाकुर जी की झोली में डाल दिया गया था। बस जब तक माँ का दूध पीती रही घर पर ठाकुर जी की अमानत बनकर रही और दो बरस की हुई तो आश्रम वाले ले गए। साल भर तो माँ मिलती रही उससे और एक सुबह आश्रम धूँ-धूँ जल उठा। कोई साबुत नहीं बचा। माँ भी रो पीटकर रह गई और फिर उसके जन्म ने माँ के घाव पर थोड़ा मरहम लगाया। फिर धीरे-धीरे उन किलकारियों में दीदी की किलकारियाँ धूमिल होने लगी। लेकिन.... आश्रम का जलना भी तो उलझी पहेली ही थी क्योंकि जली हुई हड्डियाँ भी न मिली थीं वहाँ किसी की। कुछ मिलाकर तीस बच्चे और दस बड़े थे वहाँ। किसी की अधजली हड्डी तो शेष होती वहाँ? बस जब माँ इन बातों को सोच लेती थी तो उस दिन तो उनकी सुबकियों में पूरा घर डूब जाया करता था। तरह तरह की अफवाहें अलग। इन सबके बीच बाबू भी चल बसे और माँ उसे लेकर शहर आ गई। कर्जा चुकाने के बाद, बचा भी न था कुछ कि दो वक्त की रोटी जुगाड़ी जाए और माँ तो उसे बहुत पढ़ाना भी चाहती थी और उसे लगा सपने तो शहर में जाकर ही पूरे होते हैं।”

और बस अबतक सबके समौसे भी प्लेट से खत्म हो चुके होते थे और फिर भी सब यंत्रवत अपने अपने रास्ते।

लेकिन पता नहीं रूही को क्या हो गया था। बस आँसू बहते ही जा रहे थे उसके, मानो किसी की मौत का मातम वो बरसों बाद मना रही हो।

और राजेश बस एकटक उसकी आँखों में पता नहीं क्या ढूँढ़ना चाहता था।

दिन बीतते जा रहे थे। सरदियों के बाद गरमी और फिर बारिश ...लेकिन रूही अकसर समौसे के बहाने राजेश की बातें सुनने चली आए करती थी। उसकी बातें उसे अच्छी लगने लगी थीं। यहाँ आकर उसकी रूह को सकून मिलता था। पता नहीं समौसे के साथ उस कुल्हड़ वाली चाय में उसकी बातें कितनी मिश्री घोल देती थी कि रूही सारी उदासी और थकान भूल जाया करती थी। बातें कभी न अंत होने वाली बातें।

सिलसिला चलता गया। मायाबाई भी सबकुछ जानते हुए चुप रहना ही बेहतर समझती। उसके अड्डे की जान जो ठहरी वो। और इधर एक दिन राजेश ने तय किया कि वो रूही के साथ दूसरे शहर चला जाएगा जहाँ उन्हें कोई न जानता हो।

अपनी माँ को वो मना ही लेगा वो जानता था। और बात रही रोजगार की तो ... जिसके हाथ में हुनर हो वो दुनिया के किसी भी कोने में अपना पेट भर ही लेगा।

बस रूही को ही राजी करना बड़ा काम

था।

और जब रूही के सामने उसने ये प्रस्ताव रखा तो रूही रोते हुए बोली ... "मुक्ति तो चाहती हूँ ऐसी जिंदगी से लेकिन तुम्हारी जिंदगी खराब भी नहीं कर सकती न? बोलो दोस्त बनाकर रख सकोगे तो चलूँगी तुम्हारे साथ... बस नहीं तो नहीं।"

पता नहीं रूही की बातों में ऐसा क्या था कि राजेश ने हाँ कर दी और राजेश, रूही और राजेश की माँ चल पड़े महानगर की ओर ... जहाँ सड़कें तो भरपूर चौड़ी थी लेकिन गलियाँ उतनी ही संकीर्ण। पैदल चले जा रहे थे तीनों... सामने से हाथ रिकशा आ रहा था ... बूढ़ा था बेचारा अचानक कदम लड़खड़ाए और गिर पड़ा? और ऐसा गिरा कि रूही के कुरते की बाजू बुरी तरह से फट गई। राजेश रिकशेवाले को उठाने लगा और माँ रूही को। हाथों पर खून की लकीरों के बीच त्रिशूल का निशान।

और माँ चीख उठी ... राजेश।

राजेश बचपन से इतने किस्से सुन चुका था कि उसे सबकुछ समझते समय न लगा। उसे पता था कि अब उस त्रिशूल की रक्षा उसे ही करना है शायद खूद त्रिशूल बनकर।

और रूही आज भी आधी नींद में अपने घर में बस वही बड़बड़ किए जा रही थी उप्फ वही सपना।

संपर्क : फ्लैट नं. डी-23, 4/बी/1, सलकिया स्कूल रोड, राघव रिवर व्यू कॉम्पलेक्स-4, दूसरा तल्ला, हावड़ा-711106, Email : saritaagarwal1972@yahoo.in, Mob. : 8017135857

कूच हंसा दीप

डॉक्टरों की सख्त ताकीद है। पूरे एक सप्ताह तक बिस्तर में पड़े रहना है। अगर ये सात दिन पूरी तरह आराम कर लिया तो आठवें दिन से उन्हें घूमने की छूट मिल जाएगी और अस्पताल से छुट्टी भी। बिबसी में सात दिनों का इंतजार कतई बुरा नहीं लगा। मरता क्या न करता।

आज सोमवार, पहला दिन है। सबसे बड़ी परेशानी यह है कि पड़े-पड़े दिन में कई बार झपकी लग गई। ज्यादा तकलीफ तब होती है, जब रात में नींद न आए। यही हुआ। टुकड़ों-टुकड़ों में ली गई झपकियों ने रात की नींद की खेप को हजम कर लिया। सब लोग बत्ती बुझाकर चले गए थे। रात की ड्यूटी वाली नर्स और वार्ड बॉय गुड नाइट कहकर अपना फर्ज पूरा कर गए थे। गुडनाइट सुनकर अगर नींद आ जाए तो फिर क्या कहने!

आँखों में नींद न हो तो तमाम भूली-बिसरी स्मृतियाँ ता-थई करने लगती हैं। दिल में कुहक उठी। बीते दिन कहीं से उड़ते-गाते, हवा में तैरते, उनके बिस्तर तक चले आए। यहाँ परदेस की धरती पर उन्हें छू कर दिल को तरंगित करने लगे। छत को घूरती निगाहें यादों के साथ परवाज करती अपने देश पहुँच गई थीं, जब शादी करके शोना को घर लिवा लाए थे। घर क्या था, चारदीवारी का एक कमरा था। उन दिनों घर में जरूरत की चंद चीजों के अलावा कुछ नहीं होता था। दोनों पति-पत्नी एक दूसरे में सिमट कर एक पतली-सी गादी बिछाकर सो जाते थे; एक दूसरे के हाथों का सिरहाना बनाकर। नींद भी ऐसी आती थी कि दूधवाला खट-खट करता था तभी घबरा कर उठते थे। उन दिनों सोने के लिए कभी करवटें नहीं बदलनी पड़ती थीं। नींद जैसे आँखों की कोरों में खड़ी रहती। कब आँखें मूँदें और गहरी नींद सो जाएँ।

वह समय बीत गया। न शोना है, न वह कमरा। यहाँ इतनी सुविधाएँ होने के बावजूद नींद के आगोश में नहीं पहुँच पाते। ऊँचा पलंग, गद्देदार तकिया और एयरकंडीशंड कमरा। करवटें बदल-बदल कर थक जाते हैं। एक-एक करके दोनों हाथ इनकार कर देते हैं- “अब तुम्हारा वजन नहीं सह सकते।” चित्त होकर सोने में कमर बगावत कर देती है। लगता जैसे चैन से सोना अब लिखा ही नहीं भाग्य में। बावला मन कहीं दूर चला जाता। इतनी दूर कि लौट कर आने में सारी रात निकल जाती।

अतीत कैसा भी हो, अच्छा या बुरा, ‘पलेवण’ करने को मन बेचैन हो जाता है। पलेवण साफ-सफाई से जुड़ा आँचलिक शब्द है। अपनी चीजों का मुआएना करके हवा दिखाना, साफ करना। मगर इसका असली अर्थ मन से जुड़ा है। उन चीजों को सहला कर, उनसे बातें करके ऊर्जा पाना। यह लोगों पर है कि वे प्यार से बातें करें या उन्हें छूकर बस देखते ही रहें। उनके खास मित्र विरही जी बता रहे थे- जब भी रात चुभती है, नींद न आने की झुंझलाहट

परेशान करती है तब अपनी किताबें लेकर बैठ जाते हैं। प्यार से किताबों को देखते हैं। हर एक किताब का स्पर्श उन्हें वे सारी यादें दे जाता है, जब उन्होंने इस किताब को लिखने की योजना बनायी थी। एक-एक शब्द के लिए संघर्ष किया था; जब पांडुलिपि भेजी थी, जब छप कर आई थी, जब इसकी चर्चा हुई थी। उन बीते पलों में सुकून खोज लेता मन और नींद आ जाती। हथेली के नीचे रखी किताबों की गर्मी से आँख ऐसे लग जाती कि सुबह ही खुलती। तब सवेरे उठकर भी रात के मीठे पल याद रहते- 'सुनती हो, जरा देखो तो, तुम्हारे लिए यह कविता लिखी थी।'

हाँ, याद है मुझे। 'विरही जी पढ़ने लगते। राग से गाते हुए पत्नी की आँखों में देखते। वह नयी नवेली-सी शर्मा जाती। तब सुबह की चाय और उसकी मुस्कान से एक नए दिन की शुरुआत होती। विरही जी के जीवन को खंगालते कई अच्छे-बुरे अनुभव एक के बाद एक फिल्म की तरह चलते रहे। किसी एक दृश्य में उनकी पलकें कब झपक गईं, पता न चला। जब नींद खुली, तब सवेरा हो गया था।

मंगलवार-दिन में सफाई कर्मचारी आते हैं। डॉक्टर आते हैं। नर्स चक्कर लगाती है। कभी ये तो कभी वो। कभी समय कट जाता है, कभी इस आवाजाही के बीच का समय भी भारी लगने लगता है। ऊपर की छत घूरते हुए भी तो मन कहीं रमना चाहिए। कौन सा किस्सा याद करे जिससे इन तकलीफ देह पलों की खीज मिट जाय। सामने से गुजरता हड्डा-कड्डा वार्ड बॉय उन्हें मामाजी की याद दिला जाता है। कुछ ऐसी ही कद-काठी के थे उनके रईस मामाजी। बचपन में स्कूल की छुट्टियों में एकाध सप्ताह के लिए मामा के घर जाते थे। उनकी शान-शौकत ही अलग थी। पैसों की खनक मामाजी के चेहरे से लेकर घर के जर्रे-जर्रे तक में दिखायी देती थी। जिस दिन भी मामी देखती कि मामाजी बेवजह चिड़चिड़ा रहे हैं, तुरंत कहती- "पट खोले

बहुत दिन हो गए!" तब मामाजी अपनी तिजोरी खोलकर बैठते। अपनी जमा सोने-चाँदी की कीमती चीजें अलटते-पलटते, अपने मालिकाना हक की कशिश महसूसते। अपने गरीबी वाले दिनों को याद करते। जब पास में कुछ नहीं था, जब रोटी के साथ कांदा खाकर दिन गुजारने पड़े थे। आज तो इतना कमा लिया है। इतना संचित कर लिया है। सोने-चाँदी के गहनों की वह चमक आँखों में जगमगाती। सोने के बिस्कुट बड़े कुरकुरे और लजीज़ स्वाद देते। मामी के हीराँजड़े गहने उनके शरीर पर सजे नजर आते। सजी हुई वह दुल्हन करीब आती प्रतीत होती। शोख और कमसिन आँखें, अपनी ओर खींचते लरजते होंठ। मामाजी का चिड़चिड़ापन रोमाँस में बदल जाता। मामी को प्यार से देखते और कहते- "एक खजाना अभी देखा, दूसरा देख रहा हूँ।" मामी विजयी मुस्कान को समेटे काम में लग जाती।

मामाजी की छवि ओझल हुई तो फिर से वही पलंग था और वही अस्पताल का कमरा। अब यहाँ बिस्तर पर कौन सा खजाना उन्हें मिले कि उसे देखते रहें। अपने पौधे याद आते हैं। वे सारे पौधे जिनके कितने नए पत्ते हैं, कितनी कलियाँ हैं और कितने फूल आजकल में झरने वाले हैं; पूरा लेखा-जोखा उनके पास रहा करता था। तब कितनी बातें करते थे! हर कली से पूछते थे- "तैयार हो खिलने के लिए?" कली अपनी मासूमियत भरी मुस्कान देती। यहाँ के विदेशी कैक्टस और फूलों से भी जी भरकर बातें करते। देश-विदेश के पौधों में कोई अंतर नजर नहीं आता। एक ही प्रवृत्ति-आज खिला है, कल मुरझाने लगेगा। एकरूपता हर जमीन के लिए। पतझड़, बहार, हर मौसम की तासीर वही। कहीं कम तो कहीं ज्यादा। आदमी की तासीर भी वही- इंसानियत और हैवानियत। कहीं कम तो कहीं ज्यादा। इंसानियत को खोजते हुए थकी आँखें बंद होने लगीं।

बुधवार- रोज के बजाय आज अच्छा लग रहा है। तीसरे दिन का आधा दिन लगभग बीत

गया। इसकी एक खास वजह है। आज अस्पताल में बच्चे आने वाले हैं। आधा दिन बच्चों की प्रतीक्षा में और आधा दिन उनको देखते हुए निकल जाएगा। स्कूल से लौटकर आने के बाद दादाजी से मिलने के लिए केविन को लेकर आए बेटा-बहू। बच्चों से मिलने की खुशी है। एक दिन देख लो बच्चों को तो कई दिनों की प्यास ठंडी हो जाती है। पोता केविन एक बार "हाय दादाजी!" कहकर अपने खिलौनों के साथ खेलने लग जाता है। कहीं भी जाए उसके तामझाम उसके साथ होते हैं। अपने कंधों पर लटका उसका बैकपैक हमेशा उसके साथ होता है। शायद वह जानता है कि बड़ों की दुनिया में उसकी कोई जगह नहीं। अपने दोस्त खिलौने साथ होंगे तो उनसे बात करके समय काट सकता है। घर पर भी खूब धमा-धौकड़ी के बाद जब डाँट पड़ती तो अपने कमरे में चला जाता। अपने छोटे-मोटे सारे खिलौनों को लेकर बैठ जाता। उनसे बातें करता। उसके पसंदीदा कैरेक्टर मारियो और लुईस उसके साथ होते। उन्हें हवाईजहाज में बैठा कर सैर कराता। उसे लगता, ये खिलौने ही उसके सच्चे साथी हैं। बात करते, हँसते, होंठों पर मुस्कान ले आते। घंटे-दो घंटे उनसे बतिया कर अपना गुस्सा निकाल देता। कई गुना ऊर्जा वापस लौट आती।

कुछ देर बातें करके बच्चे चले गए। उनके जाने के बाद भी केविन के साथ बिताए पल याद आते रहे। जब उसके साथ वीडियो गेम खेलते कभी जीत न पाते। केविन सिखाता- 'अपने कैरेक्टर को बचाइए, दादाजी।' वे पूरी कोशिश करते फिर भी उसे बचा नहीं पाते और हार जाते। उन्हें लगा कि वे मन-ही-मन प्रेक्टिस कर सकते हैं। उनके हाथ चलने लगे। वे बचते-बचाते खेल रहे थे, आखिरी तक। ये क्या, आज वे जीत रहे हैं! जीत की मुस्कान होठों पर थी व आँखों में एक तराशे हुए खिलाड़ी का गौरव। खुशी में पलकें भारी होकर झुक रही थीं।

गुरुवार-जब वे खुश होते हैं तब यहाँ विदेश

की अच्छी यादों में खो जाते हैं। दुःखी होते हैं तो मन ही मन अपनी धरती पर लौट जाते हैं। आज वे दुःखी तो नहीं मगर बेचैन हैं। धीमी गति से समय कट रहा है। बेचैनी में एक बात सालती है कि अगर भारत में होते तो कई लोग उनकी तबीयत पूछने आते। बहुत सारा समय यूँ ही कट जाता। वे भी तो अपनी दादी से मिलने, उनकी तबीयत पूछने कभी-कभार जाते थे। गाँव में दादी के लिए वह पुराना संदूक जैसे शांति का भंडार था। उसे उठाते हुए दादी का ऐसा लाड़ उमड़ता कि सब कुछ भूल कर उस छोटी सी पेटी में खो जाती। उसे खोलते ही बरसों पुरानी गंध दादी के नथुनों में समा जाती। कुछ मुड़े-तुड़े कपड़े निकलते। दादा जी का अंगोछा लेकर दादी प्यार से अपने गले में डाल लेती। मानो अंगोछे के दोनों सिरे दादाजी के हाथ हों, अपनी ओर खींचते हुए। उनकी टूटी ऐनक और इक्का-दुक्का मटमैली तस्वीरों को छूकर वापस रख देती। जब उनसे बातें करके उठती तो मन का सारा मलाल बह जाता। जैसे कोई अपनी आपबीती कहकर, मन हल्का करके चला गया हो। उन पलों को याद करती, जब कई उमंगें लेकर उस देहरी में प्रवेश किया था। यह छोटा-सा घर ही उनकी पूरी दुनिया हुआ करता था। आखिरी समय तक वे इतनी लाचार और बेबस हो गई थीं कि घर की हर ईंट उन्हें अपना सिर फोड़ती नजर आती, सिवाय उस संदूक के। वह बेजान पिटारा कई रोगों की अचूक दवा हो गया था।

दादी की मूँदती आँखों को देखते हुए बहुत सुकून मिल रहा था। इतना कि उनकी अलसायी पलकें झपकने लगीं और वे गहरी नींद के आगोश में समा गए।

शुक्रवार-आज एक ऐसा दिन है जब सबको खुश होना है। दीवाली की रात है। विदेश की दीवाली-होली सब समान होती है। दीवाली के दीयों की यादें कब की धूमिल हो चुकीं। कुछ याद करने के लिए मिलता नहीं। लगा, आज वे

सबसे गरीब हैं। इस दुनिया में ऐसा कुछ नहीं जो मन को राहत दे सके। अस्पताल के अहाते में इक्का-दुक्का भारतीय लोग एक दूसरे को दीवाली की मुबारकबाद दे रहे हैं। महज़ एक औपचारिकता निबाहते हुए फिर से अपने काम में मगन हो जाते हैं। साथ के कमरे से आवाज़ें आ रही हैं। लगता है आज किसी और मरीज का परिवार मिलने आए है। सामने टीवी चल रहा है जिसमें कोई आर्ट टीचर अपनी कलाकृतियों में रंग भरने की कला को आवाज दे रही है। अपने भाई की पोती की याद आती है जो बहुत अच्छी चित्रकार है। अभी दस वर्ष की है किंतु उसके हाथ सधने लगे हैं। अभ्यास करते-करते वह अपनी कृतियों को आकार देने का भरसक प्रयास करती है। कैनवास पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींचती है और अपनी उम्र की समझ के अनुसार बिखरे-बिखरे-से रंग भरती है। वह उसकी अपनी दुनिया है। वह जैसे चाहे रंगों को आकार देती है। नारंगी रंग उसके लिए 'वॉर्म' रंग है, जबकि गहरा जामुनी रंग 'कूल' है। हरे रंग को वह हरा ही कहती है। कभी अपनी रचना को देख मुस्कराती है तो कभी असंतुष्ट होकर अंजाम तक पहुँचाने से पहले ही फाड़ कर फेंक देती है। यह उसकी अपनी जायदाद है जिसे उसके अलावा कोई इस्तेमाल नहीं कर सकता। रंगों की दुनिया के वे रंग उनके पलंग के आसपास चक्कर लगाकर आँखों के सामने एक इन्द्रधनुष-सा रच देते हैं। रंगों का बेहतरीन समावेश, जिसे आकाश की ऊँचाइयों तक देखते हुए, उन रंगों के पीछे भागती आँखें थक कर मूँदने लग जाती हैं।

शनिवार- आज अपने दिमाग में वे पैकिंग करने लगे हैं। घर जाना है। कमरे में रखी चीजों का वाइंड अप करना है। इस कैद से मुक्ति मिल जानी है। बावजूद इसके मन प्रसन्न नहीं है। नींद के कोई आसार नजर नहीं आते। मन कुछ ऐसा ढूँढ़ रहा है जिसमें चमक हो। वह चमक परावर्तित होकर उनकी आँखों में समा जाए। ऐसी चमक

क्या हो सकती है! सिक्कों की चमक, करकराते नोटों की या फिर किसी और चीज की। भारत में जब उनका धंधा जोर-शोर से चल रहा था तब नोटों की गड़ियाँ थोक में आती थीं। बैंक से आए नए नोटों की, एक के ऊपर एक रखी गड़ियों की लाइन शाम तक लंबी हो जाती थी। दुनिया की हर लाइन के मुकाबले वह सबसे सधी हुई लाइन होती थी। शायद उनका अवचेतन मन नोटों की गड़ियाँ देखना चाहता है। लेकिन देखें कैसे, अब वे लखपति गरीब हैं। जितना पैसा है, सारा कम्प्यूटर में एक्सेल फाइल में है। खातों के नंबर और पासवर्ड के साथ। क्रेडिट कार्ड के प्लास्टिक के टुकड़ों में समाया पैसा आँखों को राहत नहीं देता। अपने सामने ढगला (ढेर) पड़ा देखने की तो बात ही कुछ और थी। कीमती चीजों का ढगला। नोटों का ढगला। अब सारे ढगले लॉकर में रखे हैं। मन में लॉकर का वह डिब्बा घूमता है जिसमें ठूस-ठूस कर, जगह बना-बना कर कीमती चीजें डाल दी गई थीं। बड़ी जद्दोजहद से बैंक पहुँचकर, अपनी हर एक याद को लॉकर में बंद कर दिया था। उस लॉकर की वह चाबी किसी काम की नहीं थी कि उसे सहला कर कुछ महसूस किया जा सके। वह भी घर के किसी झावर में एक लोहे के टुकड़े की तरह पड़ी रहती थी। क्रेडिट-डेबिट कार्ड के बिते भर टुकड़े को देखकर कुछ महसूस नहीं होता कि इससे कितना पैसा निकाला जा सकता है।

आँखों की अपनी प्यास बढ़ती है तो शरीर के दूसरे अंग भी अपनी-अपनी भूख-प्यास जताने लगते हैं। नाक को किसी गंध की प्रतीक्षा है। देस-परदेस की किसी मिट्टी की गंध नहीं पहुँचती इस समय। उस पर बर्फ ने कब्जा कर लिया है। सफेदी को छितराते बर्फ के कणों से ठंडक मिल सकती है, महक नहीं। यहाँ अस्पताल में कोई पुरानी तस्वीर भी नहीं है। सब कुछ छोड़ आए थे। धरती भी और वहाँ की हर चीज़ भी। इस पल कुछ खास करने की जरूरत थी। राहत की।

संवेदना की। कुछ न ढूँढ़ पाए। यादों को ताश के पत्तों की तरह शफल करने की कोशिश भर कर सकते हैं। अच्छी यादें जिद्दी हो जाती हैं। मचलते बच्चे की तरह दूर-दूर छिटकती जाती हैं, गोद में आती ही नहीं।

इस समय उस क्षण की जरूरत थी जिसमें खोजाने को मन करता है। माँ कहाँ करती थीं- “तू बहुत भावुक है, दिल को मजबूत रखा कर।” माँ की हजारों बातें नहीं सुनीं किन्तु यह एक बात गाँठ बाँध ली। बेटे का विदेश जाने के लिए प्रमोशन हुआ तो भावुकता को ताक पर रख दिया। मजबूती से बेटे के साथ जाने की बात सोच ली। सब बेच-बुच दिया। सारी जायदाद पैसों में बदल कर बैंकों के खातों में चली गई। भाई ने चेतावनी दी थी- “तू सब वाइंड-अप करके जा रहा है, अगर विदेश में अच्छा न लगा तो?”

“अच्छा क्यों न लगेगा! वैसे भी अब उमर हो रही है। दौड़ा-दौड़ी न होगी मुझसे।” उस समय विदेश का जुनून ही कुछ और था। विदेश गमन की दमित इच्छा बेटे ने पूरी कर दी थी। एक बेटे के अलावा उनका कोई नहीं था। शोना भी नहीं रही थी। वहाँ अकेले रह कर करते भी क्या। यहाँ आकर कुछ ही दिनों में अकेलापन हावी होने लगा और विदेश का भूत हवा हो गया। उस भूत को वापस पकड़ना चाहते हैं। लेकिन वह भागता जा रहा है, वे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ते जा रहे हैं। हाँफते हुए थक कर रुक जाते हैं और आँखें बंद करके अपनी साँस को खींचते हैं। थका शरीर निद्रा की गोद में चला जाता है।

रविवार - आखिरी दिन है। न जाने

अस्पताल की कैद से वाइंड अप कर रहे हैं या उन सारी यादों से जो इन सात दिनों की साक्षी बनीं। कुछ यादों ने मुस्कान दी। कुछ यादें चुपचाप आई और इस तरह चली गई कि आँखों की पोरों से पानी तक न बहा। अच्छा हुआ शोना दुनिया से जल्दी चली गई वरना वह भी इसी तरह तड़पती रहती। आज शोना की यादें भी साथ नहीं दे रही। ब्लडप्रेसर जाँचती उस युवा नर्स के हाथों ने एक भूली-बिसरी याद को ताजा कर दिया। उस मिठास को महसूस करवाया जो दो किशोरों की पहली प्यार से भरी अनुभूति थी। उसे सिर्फ एक बार देखा और बहुत कुछ महसूस किया था। आँखों ने उसके चेहरे से हटने से मना कर दिया था और हाथ उसका हाथ छोड़ने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। वह पल जब धरती थम गई थी। सूरज की रोशनी ने चाँद सी शीतलता बिखेर दी थी व लप-झप करते तारे उस पल के साक्षी बने थे, पहली बार जब उसे छुआ था। पहली बार और आखिरी बार। पैर उसके साथ चलने को बाध्य करते रहे मगर किसी की जिद नहीं चली। वह फिर कभी जीवन के किसी हिस्से में न रही पर एक पल का वह ठहराव आज भी फुरफुरी दे गया। वह स्पर्श दोनों हाथों की उँगलियों से बहता हुआ नख से शिख तक पहुँचा। हौले-हौले, होंठों पर मुस्कान आई और गहरी नींद के लिए आतुर आँखों की पुतलियाँ स्थिर हो गईं।

सुबह राउंड पर डॉक्टरों की टीम आई तो हतप्रभ रह गई। उनकी देह निर्जीव पड़ी थी। एक सप्ताह से कैद परिंदा उड़ान के लिए कूच कर चुका था।

संपर्क : 22 Farrell Avenue, North York, Toronto , ON – M2R1C8, Canada, 001 647 213 1817,
hansadeep8@gmail.com

खज़ाना (लघुकथा)

संजय रॉय

किताबों से भरी बंद लाइब्रेरी को चट करने की योजना बना रहे दीमकों की फौज ने अपने साथियों से कहाँ, 'दोस्तों...आप सभी किताबों की सौधी खुशबू से भलीभाँति परिचित हैं, मैं इस विषय में कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता, पर इतना जरूर कहूँगा कि असंख्य सदियाँ लुटाकर प्रकृति के नायाब तोहफा के रूप में किताबों के जरिए ही इंसानों ने दुनिया में ज्ञान की दिव्य ज्योत जलाई। पृथ्वी का अनमोल खज़ाना भी यही है पर इंसानों की मति मारी गई है जो इस खजाने से मोह भंग होता दिखाई पड़ रहा है क्योंकि इंसानों की अनमोल संजीवनी को वर्षों तक ताला लगाकर कोई ऐसे नहीं छोड़ता, थोड़ा धैर्य से काम लेना होगा, एक तरफ पेट तो दूसरी तरफ ज्ञान का मामला है। इसलिए इंसानों को एक बार इसे सहेज लेने का अवसर जरूर देना चाहिए, वरना प्रकृति के नजरों में न सही, लेकिन हमलोग अपनी नजरों में तो गिर ही जाएंगे न?"

संपर्क : शिवनारायण रोड, कच्ची घाट, पटना सिटी-8 (बिहार)

मो.-94722 75526, ईमेल- sanjayroyartist@gmail.com

गरम हवा

पवन शर्मा

‘फिर?’

‘फिर क्या...?’ वे धीमे से हँसे, ‘यही आकर बस गए।’

‘अजीब है।’ मुझे आश्चर्य हुआ।

‘इसमें अजीब क्या है!’ उनके चेहरे पर हँसी उभरी।

‘पुणे छोड़कर यहाँ आकर बस गए आप... लोग शहरों की तरफ भागते हैं!’

वे कुछ नहीं बोले, बस धीमे-धीमे मुस्कराते रहे। थोड़ी देर बाद सीलिंग फैन का स्विच दबाया और बोले, ‘गर्मी बढ़ गई है।’

‘हाँ... हाँ...’

‘मैं तो दिनभर इसी पंखे के नीचे बैठा रहता हूँ। थोड़ी देर बाद ये भी गरम हवा फँकने लगता है।’

उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया... इस घर में वे अकेले रहते हैं... घर क्या, दो कमरों का छोटा-सा किराये का मकान है... एक बार उन्होंने बताया था कि वे अपने लिए एक मकान तक नहीं बनवा पाए हैं... रिटायर्मेंट का पूरा पैसा बेटे के बिजनेस में लगा दिया... बेटे का बिजनेस खूब चल निकला... और वे अपनी पेंशन में गुजारा कर रहे हैं... बेटा बड़े फ्लैट में अच्छी जिंदगी जी रहा है... ‘एकाध हफ्ते के लिए दो कूलर किराये पर दिलवा दो, जो किराया लगेगा, दे दूँगा।’ वे बोले।

मैं चौंका, ‘क्यों?’

‘कल अमित आ रहा है, बहू और बच्चों को लेकर... उन लोगों को कोई परेशानी न हो, इसलिए... वो सब ए.सी. में रहने वाले लोग हैं।’

‘बात करता हूँ।’

‘शाम को आओगे तो बाजार से सब्जी, दूध और दही का पैकेट लेते आना।’

‘हाँ, और कुछ लगे तो आप बता देना, मैंने कहाँ।’

‘लो, पैसे रख लो,’ उन्होंने खूँटी पर टंगी अपनी शर्ट की जेब से दो सौ रुपये दिए और बोले, ‘अच्छा, अब जाओ... घर की साफ-सफाई कर लूँ... जगह-जगह मकड़ी के जाले लग गए हैं...’

मैं उठकर बाहर सड़क पर आ गया... सड़क सूनसान है... न कोई आदमरप्रत... न कोई हलचल... दुपहरिया चिलचिला रही है, जैसे कोई डाकिन खिलखिला रही हो... बुढ़ापे में वह बूढ़ा अकेला लड़ रहा है... उसकी भाग्यहीन यात्राओं का अंत नहीं हो रहा है... उसकी हर साँस डूबी हुई है, पर जिए जा रहा है...

संपर्क : विद्या भवन, वार्ड नंबर 17, सुकरी चर्च, जुन्नारदेव-480551, जिला- छिंदवाड़ा
(म.प्र.) मो. 9425837079/8319714936, ईमेल- pawansharma7079@gmail.com

दास्तान-ए-सर्टिफिकेट

मदन गुप्ता सपाटू

जब हम पधारे जगत में.....पिता जी भागे , बर्थ सर्टिफिकेट की जुगत में। पहले नर्सों ने लूटा फिर बाबुओं ने... तब जाकर हमें प्रमाणपत्र मिला कि हमने फलां फलां तारीख को फलां जगह अवतार लिया है। बंदा 115 साल का भी हो जाए तो भी बर्थ सर्टिफिकेट गले में लटकाए लटकाए घूमना पड़ता है।

जैसे ही नवंबर का महीना चढ़ता है, सरकारी विभाग मैसेज पर मैसेज डालने लग जाते हैं कि आप दफ्तर में आकर प्रूव करो कि आप इस जहाँ में कायम हैं। बंदा जितना मर्जी जिन्दादिल हो, उसे एक बार संबंधित आफिस में जाकर बताना ही पड़ता है कि मैं सचमुच जिन्दा हूँ। सरकारी आदेशों के आगे नतमस्तक होकर बाबू के सामने लिख कर देना ही पड़ता है कि हजूरे आला मैं 90 साला जवान आपकी अदालत में ब -होशो-हवास हाजिर हूँ बेशक छू कर देख लो और यह भी सत्यापित करता हूँ कि मैंने पिछले एक साल में किसी जवान या बुढ़िया से शादी या निकाह नहीं किया है। गत एक वर्ष में न कोई नौकरी ही की है।

बाबू राम लाल एक बार, हाथ में छड़ी पकड़े अपने पेंरेट ऑफिस में पेंशन न मिलने की शिकायत करने पहुँचे तो वहाँ के बाबू ने रिकार्ड देख कर बोला- हमारे रिकार्ड के मुताबिक आप पिछले साल अकाल चलाना कर चुके हैं, डिपार्टमेंट पेंशन क्यों और किसे दे? रामलाल गिड़गिड़ाए- “भाई जान! मैं पिछले साल नवंबर में बाकायदा लाईफ सर्टिफिकेट दे कर गया था और अब भी देने को तैयार हूँ।” बाबू बिगड़ गया, “आप सही हैं या सरकारी रिकार्ड? अब तो मैजिस्ट्रेट ही सर्टिफिकेट ईशू करेगा कि आप जिन्दा हैं। हम कुछ नहीं कर सकते।”

हालाँकि हमारे देश में आज भी कितने ही स्वर्गीय अपने अपने बैंक खातों में पेंशन और सरकारी सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं।

सरकारी तंत्र बंदे को जन्म से मरण तक सर्टिफिकेट में उलझाए रखता है। स्कूल में बर्थ सर्टिफिकेट, स्कूल छोड़ने का सर्टिफिकेट, हर परीक्षा पास करने का, फिर नौकरी में कैरेक्टर सर्टिफिकेट ताकि इस बात की गारंटी रहे कि आप कार्यालय में किसी महिला कर्मी की ओर आँख उठा कर नहीं देखेंगे। अब सबको अपने-अपने चरित्र का पता ही होता है परंतु जब कोई सरकारी विभाग आपको अपनी मोहर लगा कर अटेस्ट कर के कैरेक्टर सर्टिफिकेट दे देता है तो बैड कैरेक्टर भी गुड कैरेक्टर बन जाता है। कहीं नो आब्जेक्शन सर्टिफिकेट तो कहीं फलां सर्टिफिकेट।

एक आंकड़े के मुताबिक भारत सरकार 509 किस्म के सर्टिफिकेट जारी करती है। बस कुछ के नाम बदल गए हैं - आधार कार्ड, पासपोर्ट, ड्राइविंग लाइसेंस, वोटर कार्ड, सिटिजन कार्ड, इंडियन ओरिजन कार्ड, पैन कार्ड वगैरा वगैरा। घर पर एक सर्टिफिकेट की फाइल दिन-ब-दिन मोटी होती जा रही है।

कोरोना काल में तो दो डोज़ खुराक का सर्टिफिकेट लेने के लिए घंटों लाइन में लगे, धूप में सड़े, गेट कीपरों से लड़े, अनाड़ी नर्सों के पल्ले पड़े, वैक्सीन की जगह, फोके पानी के इंजेक्शन सहे, डॉक्टरों पर चढ़े, पुलिस से भिड़े..... तब जाकर प्रूव कर सके कि अब हम कोरोना प्रूफ हैं। अपने ही विभाग में नारा बदल गया- दो गज की दूरी -सर्टिफिकेट है जरूरी।

नए वेरिएंट के कारण अब तो गले में ही हम दो डोज़ का सर्टिफिकेट टाँगे-टाँगे घूम रहे हैं। दूकानदार तक सौदा देने से पहले पूछ रहा है, "दोनों वैक्सीन लगवा रखी है न? नहीं तो हमें भी लपेटे में ले लो!" बस, रेल, जहाज, पिक्चर हॉल, मॉल.... जहाँ देखें..... हाल बेहाल है। हाथ में मोबाइल पकड़े, उसमें आरोग्य सेतु घुसेड़े

हम हर जगह अपनी चैकिंग करवाते, मास्क में मुँह छिपाए-छिपाए घूम रहे हैं। यहाँ तक कि 'आरटी पी सी आर' रिपोर्ट भी हथेली पर लिए घूम रहे हैं। न जाने कहाँ चैकिंग हो जाए? पिक्चर हॉल में गेट कीपर से मनुहार कर रहे हैं, "भैया बहुत दिनों बाद पिक्चर देखने आए हैंअंदर जाने दोये देखो टिकट के साथ-साथ सारे डाक्युमेंट्स भी लाए हैं।"

कई लोग बड़े दूरदर्शी होते हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास होता है कि उनके साहबजादे जीते जी तो कुछ कर नहीं रहे, मरने के बाद भी क्या करेंगे। सो धार्मिक आस्था के अनुसार वे किसी भी तीर्थ स्थल पर जाकर एडवांस में ही अपना किरया कर्म और श्राद्ध तक निपटा लेते हैं। उन्हें भारतीय व्यवस्था पर पूर्ण भरोसा है कि ऑन लाइन प्रक्रिया के बावजूद कोई सर्टिफिकेट आसानी से मिल पाएगा? उन्हें पुरानी कहाँवत पर आज भी विश्वास है कि तोप का लाइसेंस अप्लाई करो तो बंदूक का मिलेगा। दादा मुकदमा दायर करेगा तो परपोते को न्याय मिलेगा। सरकारी दफ्तरों की सूरते हाल देखकर उन्होंने एडवांस में ही डेथ सर्टिफिकेट एप्लाई कर दिया है।

संपर्क : 458 सैक्टर -10, पंचकूला, मो- 98156-19620

कुछ दर्द मिटाने बाकी हैं / कुछ फ़र्ज़ निभाने बाकी हैं

अवधेश कुमार सिन्हा

हिंदी में महिलाओं ने अपनी आत्मकथा पुरुषों की आत्मकथा लेखन के बहुत बाद लिखना शुरू किया। जब जानकी देवी बजाज की 'मेरी जीवन यात्रा' के रूप में किसी महिला की पहली आत्मकथा सन 1956 में प्रकाशित हुई। आरंभ में महिलाएँ अपनी आत्मकथा लिखने से हिचकती थीं क्योंकि वे अपनी निजी ज़िंदगी को सार्वजनिक रूप से कह कर जोखिम उठाने का साहस नहीं जुटा पाती थीं। लेकिन धीरे-धीरे अनेक सामाजिक मान्यताएँ टूटती गईं और नई मान्यताओं ने जन्म लिया। महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगीं, रूढ़िवादी रीति-रिवाजों, परंपराओं के बंधनों से निकलने के लिए छटपटाने लगीं। उन्होंने कलम को हथियार बनाया। अपने आत्म संघर्ष को अपनी आत्मकथाओं में चित्रित करना शुरू किया। मराठी, पंजाबी, बांग्ला में लिखित स्त्री आत्मकथाओं से प्रभावित होकर हिंदी की लेखिकाएँ आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुईं। और फिर, कौशल्या बैसंत्री - दोहरा अभिशाप (1999), मैत्रेयी पुष्पा - कस्तूरी कुंडल बसै (2002) एवं गुड़िया भीतर गुड़िया (2008), सतरें और सतरें - अनीता राकेश (2002), रमणिका गुप्ता - हादसे (2005), सुशीला राय - एक अनपढ़ कहानी (2005), प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या (2007), मन्मू भंडारी - एक कहानी यह भी (2007), कृष्णा अग्निहोत्री - लगता नहीं है दिल मेरा (2010) एवं और...और...औरत (2011), सुशीला टाकभौरे - शिकंजे का दर्द (2011), मैरी कॉम - मेरी कहानी (2014) आदि कई स्त्री आत्मकथाएँ सामने आईं। ये आत्मकथाएँ एक ओर कथा लेखिका के आत्म संघर्ष को पाठक के समक्ष रखती हैं, तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं की, जो समाज में अत्याचारों को सहकर कर चुप रहती हैं, अस्मिता को जगाती हैं, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती हैं।

इसी कड़ी में अभी हाल ही सुपरिचित लेखिका डा. अहिल्या मिश्र की बाईस खंडों में तारतम्यता के साथ 324 पृष्ठों में फैली आत्मकथा, 'दरकती दीवारों से झाँकती ज़िंदगी', हैदराबाद के गीता प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। यह उनके जीवन के आरंभ से सन 2009 तक की गाथा है। वास्तव में, इसमें आत्मकथा के प्रमुख तत्वों के साथ-साथ उपन्यास के भी प्रमुख तत्व विभिन्न रूपों में शामिल हैं। इसलिए इसे एक आत्मकथात्मक उपन्यास कहाँ गया है।

औपन्यासिक धरातल पर लिखी इस आत्मकथा की नायिका स्वयं लेखिका हैं, यानि डा. अहिल्या मिश्र। 'दरकती दीवारों से झाँकती ज़िंदगी' की कहानी ममता उर्फ़ आरती (बचपन में पारिवारिक नाम) से अहिल्या मिश्र बनने की एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जिसके बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था एवं अर्धेड़ावस्था तक के विभिन्न पड़ावों से गुजरने की यात्रा सुख-दुःख, धूप-छांव, दिन-रात, ओस-ओले, झपास, झुलसाने वाले सूर्य के रौद्र रूप के टुकड़ों में बँटी है। लेखिका का सात दशकों में पसरा जीवन एक रेखीय नहीं रहा वरन अनेक रेखाएं एक दूसरे के समानांतर एक दूसरे को काटती, आपस में टकराती, उलझती, सुलझती चलती रही हैं। लेखिका मानती हैं कि उनके जीवन की संश्लिष्ट बुनावट को समग्रता में सिलसिलेवार दर्ज करना संभव नहीं था, इसलिए जीए गए क्षणों का विवरण अलग-अलग खंडों में देते हुए भी एक समय के कई टुकड़े अलग-अलग उकरे गए हैं। इस कृति में अपने अतीत को पुनः जीते हुए, वर्तमान में उसका रूपांतरण करने के साथ-साथ लेखिका ने अपनी कथा में देशकाल, तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अवस्थाओं,

धार्मिक परिवेशों, रीति-रिवाजों, परंपराओं, रूढ़ियों का भी समानांतर चित्रण किया है। साथ ही, आत्मकथात्मक उपन्यास के संवादों को आँचलिक भाषाओं सहित यथारूप प्रस्तुत कर उन्हें जीवंत कर दिया है।

लेखिका का जन्म अंग्रेजों से भारत की आजादी के एक वर्ष बाद सितम्बर, 1948 में बिहार के वर्तमान मधुबनी जिला के सागरपुर गाँव में एक उच्च जाति के संपन्न जमींदार परिवार में हुआ था। गाँव एवं आसपास के इलाके में जहाँ लोग एक ओर स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उपजी विचारधाराओं एवं ग्राम स्वराज की भावनाओं का अनुकरण कर रहे थे तो दूसरी ओर समाज में जाति व्यवस्था की कठोरता, सामंती व्यवस्था, ऊँच-नीच का भेद-भाव, रूढ़िवादी सामाजिक परंपराएँ एवं कई अतार्किक धार्मिक मान्यताएँ भी विद्यमान थीं। स्वतंत्रता सेनानी पिता समाजवादी दल के समर्थक, क्रांतिकारी स्वभाव के परिपोषक और स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। इसलिए लेखिका को विरासत में जहाँ जातिगत व सामंती अहं मिला तो साथ ही पिता से आनुवंशिक रूप से रूढ़िवादी परंपराओं, रीति-रिवाजों के विरुद्ध खुलापन, निडरता, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना, समाज की वंचित स्त्रियों को स्वावलंबी एवं लड़कियों को शिक्षा के माध्यम से सशक्त बनाना जैसे विचार भी मिले। अपना आत्मविश्लेषण करते हुए वे स्वीकार करती हैं कि अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी उनका बचपन में जिस तरीके से लालन-पालन किया गया, उससे वे बचपन से ही अत्यधिक उत्साही, मनमौजी एवं पौरुष गुण युक्त अपने मन की करने वाली जिद्दी स्वभाव की हो गई। आस-पड़ोस की महिलाएँ लड़कों जैसा बर्ताव न करने व लड़कियों की तरह रहने की हिदायतें देते हुए कहती, 'लड़की आओर बरसाइतक राति दुनू खराब होइते छैक। दुनू सँ खतरा में किंवा स्त्रीगन पड़िते छैक तऽ एहि हेतु ई दूनू सँ

बाँचि कऽ रहबाक चाही।' कुछ छिटपुट घटनाओं के कारण लड़कों से बदला लेने की वृत्ति भी बन गई।

यह आत्मकथा बिहार के उन्नीस सौ साठ के दशक की परंपराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं के साथ ही औरतों के प्रति समाज के नजरिए का एक दस्तावेज भी प्रस्तुत करती है। किशोरावस्था के अपरिपक्व उम्र में लड़कियों का उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह, ससुराल में नव-विवाहिताओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं पर थोपे जाने वाले निषेधात्मक प्रतिबंध, लड़कियों / महिलाओं में शिक्षा का अभाव व उनके ज्यादा पढ़ने की मनाही जैसी विद्रूपताओं का सजीव चित्रण यहाँ देखने को मिलता है। मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद सोलह वर्ष से भी कम उम्र में लेखिका का उनकी इच्छा के विरुद्ध एक सजातीय सम्पन्न संयुक्त जमींदार परिवार में विवाह के पश्चात ससुराल आने पर नव-विवाहिता के दैनिक क्रिया-कलापों पर परंपरा के नाम पर कई तरह के दमघौंटू प्रतिबंध लगाए गए। यहाँ तक कि पति से दिन में मिलने की मनाही थी। लेकिन इन तमाम अवरोधों व निषेधों के बावजूद उपन्यास की नायिका अहिल्या मिश्र विरासत में मिली अपनी स्वभावगत विशेषताओं एवं अपने पति के समर्थन से सामाजिक तथा पारिवारिक परंपराओं की सारी बाधाओं को पार करते हुए आगे बढ़ती रही। विवाह के बाद पति-पत्नी के प्रथम मिलन की रात वर्षों से संजोए सपनों को जीने का रोमांचक क्षण होता है। लेकिन लेखिका के लिए यह रात कुछ अलग ही रही। पति ने जब इनसे कुछ माँगने को कहाँ तो शिक्षा को स्त्री के आगे बढ़ने का सोपान मानने वाली लेखिका कहती हैं, "मैं जितना पढ़ना चाहूँगी, आप मुझे पढ़ाएँगे न।" यह सुनकर पति पहले तो चुप हो गए, फिर बोले, "ठीक है, जरूर पढ़ाऊँगा।" ससुराल में गाँव की औरतों में शिक्षा का अभाव

उन विवाहित महिलाओं के लिए अभिशाप था जिनके लिए नौकरी हेतु परदेस गए अपने पतियों को चिट्ठी के जरिए संवाद भेजना, अपने मन की बात कहना संभव नहीं था। ऐसी औरतें गाँव में एक मात्र मैट्रिक पास महिला यानी लेखिका से अपनी लाचारी व्यक्त करते हुए चिट्ठी लिखने का अनुरोध करती हैं, “बड़की दुल्हन, हमरा तो हिनकर बहुत याद अवइछै, किन्तु हम पढ़ल-लिखल तऽ नइ छी, केनाकऽ हिनका संवाद भेजिअउ? आ केकरा की कहिअउ? केना कऽ कोनो बात कहिअउ? केकरा की बुझेतइ? अहाँ हमर चिट्ठी लिख देबइ तऽ हमर संवाद पहुँच सकैए। अहाँ पढ़ल छिअइ ने। कि, अहाँ हमर चिट्ठी लिख देबइ तऽ हम अहाँक उपकार मानब।” और अहिल्या जी उन सभी को ऑब्लाईज करती हैं।

दकियानुसी और रूढ़िवादी परंपराओं को मानने वाले ससुराल द्वारा औरतों को ज्यादा पढ़ने-लिखने का विरोध करने के बावजूद उपन्यास की नायिका अहिल्या मिश्र अपने पति व मायके के समर्थन से अपनी पढ़ाई को आगे जारी रखती हैं। ससुराल वालों की नाराजगी एवं उनके द्वारा किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं दिए जाने के बावजूद भी वह शहर के कॉलेज में पति की एम. ए. (अर्थशास्त्र) एवं अपनी बी. ए. की पढ़ाई का खर्च अपने सारे जेवर बेच कर पूरा करती हैं।

गाँव में अवसरों की कमी, अपने बेटे के भविष्य की चिंता और स्वयं कुछ बनने की अभिलाषा मिश्रा दम्पति को शादी के पाँच सालों बाद हैदराबाद महानगर ले आती है। गाँव में कई कमरों के विशाल मकान में रह चुका जमींदार परिवार का वारिस और उसकी पत्नी शहर में कंपनी के मात्र एक कमरे में गुजारा करता है। उस समय बिहार और उत्तर प्रदेश की ज्यादातर सवर्ण औरतें नौकरी

नहीं किया करती थीं और ग्रामीण परिवेश से आई महिलाएं पर्दे में रहा करती थीं। इसलिए बी. ए. पास लेखिका जब एक विद्युत मीटर फैक्ट्री में सुपरवाइजर की नौकरी करती है तो पड़ोस के क्वार्टरों में रहने वाले पूर्वांचल के लोग ताने कसते हैं, “ई मिसरैनिया जेहि तरह आजादी से घूमे फिरे ले ओकर असर हमार बेटे पतोहू पर परेला। ऊ सब लोगिन भी ई सब सीख के बिगड़ जाई। वही सब ई लड़कीयन भी करे लगिहें त समाज में हमार कुल खानदान के नाक नु कटि जाई। कोई एकरा के रोकत काहे ना बाटे।” लेकिन इन वर्जनाओं और तानों की परवाह किये बिना अहिल्या जी तमाम कठिनाइयों के बावजूद अपनी नौकरी के साथ-साथ आगे की पढ़ाई व शिखर पर पहुँचने की संघर्षपूर्ण यात्रा जारी रखती हैं। बी. एड. कर 100 रुपये प्रतिमाह पर एक स्कूल ज्वाइन करना, एम. ए. कर छब्बीस वर्ष की उम्र में एक दूसरे स्कूल / जूनियर कॉलेज में शिक्षिका / पार्ट टाइम लेक्चरर हो जाना, सगे-संबंधियों से मदद नहीं मिलने पर भी अन्य से कुछ कर्ज लेकर हैदराबाद में अपना मकान खरीदना, कर्ज को चुकाने के लिए हैदराबाद से काफी दूर अरुणाचल प्रदेश के केंद्रीय विद्यालय में सरकारी नौकरी करना, पर परिवार के हितों को ध्यान में रखते हुए एक साल में ही इस नौकरी को छोड़कर एक सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल में बतौर शिक्षिका हैदराबाद वापस आ जाना, पश्चात वहीं प्रधानाध्यापिका बन जाना, और उच्चतर पढ़ाई की अदम्य इच्छा शक्ति के बल पर एम. एड., एम. फिल. तथा पी. एच. डी. कर लेना विषम परिस्थितियाँ एवं संघर्षों के बीच जीते हुए एक मध्यमवर्गीय स्त्री के सतत आगे बढ़ते रहने के जुझारू दृढ़ निश्चय एवं साहस की गाथा है। हाँ, इस बीच पति का कंपनी में जेनरल मैनेजर हो जाना और बाद में नौकरी छोड़कर अपनी स्वयं

की कंपनी खोलकर व्यवसाय को आगे बढ़ाना परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने एवं जीवन को बहुत हद तक सुगम बनाने में भी सहायक होता है।

मात्र 15 वर्ष की आयु में 'सरिता' में प्रकाशित होने वाली लेखिका नौकरी, घर-परिवार की जिम्मेवारियों, पढ़ाई के साथ-साथ पुनः जोर-शोर से लेखन की ओर कदम बढ़ाती हैं। हैदराबाद की साहित्यिक संस्थाओं में मिलने वाली ख्याति शहर से बाहर पहुँचने लगती है। यद्यपि उनकी बढ़ती ख्याति को इकलप्लस करने के लिए कुछ लोग प्रयास करते हैं पर इनकी परवाह किये बिना वे आगे बढ़ती रहती हैं। पति ने घर से बाहर पैर निकालकर साहित्यिक कार्यक्रमों में शामिल होने से मना तो नहीं किया पर यह स्पष्ट कह दिया, "मैं आपको हरगिज रोकूंगा नहीं, लेकिन घर से बाहर पाँव निकालने से पहले या वहाँ जाने से पूर्व मैं चाहूँगा कि आप मुझे एक वचन दें कि आप इस ओर बढ़ेंगी तो अपने फैसले स्वयं करने की हिम्मत जुटाकर घर से निकलेंगी। किसी भी बात के लिए घर को या अन्य लोगों को कोई तकलीफ नहीं पहुँचेगी। आपका अपने क्षेत्र का मामला चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, स्वयं निबटेंगी।" लेखिका इन जोखिमों की चुनौतियाँ स्वीकार करती हैं और अपने साहस एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ना जारी रखती हैं। उन्हें न केवल हिन्दुस्तान के विभिन्न नगरों के साहित्यिक कार्यक्रमों में आमंत्रित किया जाता है बल्कि वे सरकारी प्रतिनिधि मंडलों में शामिल होकर मॉरीशस, नेपाल, भूटान की साहित्यिक यात्राएँ भी करती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, निबंध प्रकाशित होने के साथ अगले कुछ वर्षों में अहिल्या जी के कई कविता संग्रह, कहानी संग्रह, नाटक संग्रह और निबंध संग्रह प्रकाशित होते हैं। कई कविताएँ, कहाँनियाँ विभिन्न संपादित संकलनों में शामिल की जाती हैं। वे कई पत्रिकाओं का

संपादन करती हैं। हैदराबाद में साहित्यिक संस्था 'कादम्बिनी क्लब' स्थापित करने के साथ-साथ अपनी एक साहित्यिक पत्रिका 'पुष्पक' (बाद में पुष्पक साहित्यिकी) का निरंतर प्रकाशन आरंभ करती हैं। हिंदी प्रचार सभा से जुड़कर दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सक्रिय सहभागिता निभाती हैं।

डा. अहिल्या मिश्र केवल 'भारतीय नारी तेरी जय हो' जैसे नाटक लिखे और 'नारी दंश दलन साहित्य', 'आधुनिकता के आईने में स्त्री संघर्ष', 'स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम' जैसे निबंध संग्रह लिख कर स्त्री सशक्तिकरण पर केवल संभाषण ही नहीं करती वरन महिला नवजीवन मंडल की प्राचार्या / मानद प्रशासक तथा नवजीवन वोक्शनल अकादमी की मानद निदेशक के रूप में जमीन पर उतरकर स्त्रियों में, विशेषकर कमजोर व आर्थिक रूप से विवश एवं गरीबी रेखा से नीचे जीने वाली स्त्रियों में शिक्षा का अथक प्रचार-प्रसार कर, उनमें व्यावसायिक योग्यता पैदा कर, उन्हें सरकारी नियुक्ति दिलवाकर या अन्य तरीके से अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद कर उन्हें आत्म-निर्भर बनाने का महती कार्य भी करती हैं।

एक औरत पत्नी, माँ, बंधु तथा ससुराल व मायके के परिवारों का अलग-अलग रूपों में अटूट हिस्सा बनकर अपनी जिंदगी विभिन्न स्तरों पर जीती है। जमीन से शिखर पर चढ़ने की जद्दोजहद में इस आत्मकथात्मक उपन्यास की नायिका अहिल्या मिश्र भी अपने लेखन, साहित्यिक व शैक्षणिक संस्थागत जिम्मेवारियों, स्त्री सशक्तिकरण के कार्यों में व्यस्तता के बावजूद इन सारे फर्जों का बखूबी निर्वहन करती चलती हैं। वे जीवटता तथा चुनौतियों एवं जोखिमों से जूझने की अपनी प्रवृत्ति से कहीं भी हार नहीं मानती हैं और नेति-नेति, चरैवेति-चरैवेति के अपने घोष शब्दों के साथ आगे बढ़ती चलती हैं। अपने इकलौते पुत्र

को उसके एक मित्र के द्वारा ही गोली मारने पर वे उसे बुरी तरह घायल अवस्था में अस्पताल में ऐडमिट कराती हैं तो पता चलता है कि डॉक्टरों की हड़ताल चल रही है। जीवन-मृत्यु के बीच झूलते हुए अपने बच्चे को ऐसी स्थिति में पाकर माँ परेशान तो होती है पर धैर्य नहीं खोती। अपनी एक पूर्व सहकर्मी के माध्यम से राज्य के स्वास्थ्य मंत्री से बेटे को बचाने की गुहार लगाती है और इलाज की पूरी व्यवस्था करती है। तीन महीने तक बिस्तर पर पड़े बेटे की तिमारदारी के लिए वह जूनियर कॉलेज में पार्ट टाइम लेक्चरर की नौकरी छोड़ देती है। अपने सगे-संबंधियों की हर तरह से मदद करने के बाद भी जब वे मुँह मोड़ लेते हैं, रिश्तों में खटास आती है, ससुराल में जायदाद का बंटवारा हो जाता है तो अहिल्या मिश्र को स्वाभाविक दुःख तो होता है, क्षण भर के लिए विक्षिप्त तो होती हैं पर, वे संयम व धीरज से स्वयं एवं परिवार को संभालती हैं। एक सड़क दुर्घटना में घायल हो जाने पर जब अस्पताल में लेखिका के पैर का ऑपरेशन हो रहा होता है उसी समय सुदूर बिहार में गंगा के किनारे माँ की चिता जल रही होती है। अपनी माँ का अंतिम दर्शन नहीं कर पाने की असीम वेदना भी वे स्वयं में ज़ब्र होकर झेल जाती हैं। पति का अचानक एक दिन अपनी फ़ैक्ट्री में कुर्सी से गिरने के बाद ब्रेन हैमरेज होने से उनके शरीर का एक भाग पक्षाघात से ग्रसित हो जाता है। डेढ़ महीने तक अस्पताल में पड़े रहने के दौरान अहिल्या मिश्र अपने पत्नी धर्म का निर्वाह करते हुए दिन-भर पति की तिमारदारी करती हैं। पति के अस्पताल से वापसी के बाद स्वयं अहिल्या जी कैंसर से ग्रसित हो जाती हैं। पर, कैंसर की बात बताने से पति की हालत और बिगड़ सकती है, इसलिए पत्नी ने यह बात अपने पति को नहीं बतायी। उन्होंने अपनी शारीरिक और मानसिक वेदना से

अस्वस्थ पति को अछूता रखा। उन्हें लगता है कि यदि उन्हें कुछ हो गया तो पति इसे कैसे झेल पाएँगे। इसलिए वे पति से दूरी बनाने का निश्चय करती हैं ताकि वे अलग रहने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो सकें। वे कहती हैं, - दैहिक आधार लिए प्रेम स्वार्थ-सिद्धि का मकड़जाल है। व्यर्थ की मृग मरीचिका में पड़कर अपने को विनष्ट करना हतचित्तन ही है। जीवन यात्रा में एकाकी चलना बहुत दुस्सह है। मेरी यात्रा जिसे अब मैं पूरा कर रही हूँ, यह संगी-साथी के साथ चलने हेतु बनी ही नहीं है। एकाकी ही इस संघर्ष को जीना, भोगना पड़ेगा।” पक्षाघात के कारण पति की शारीरिक लाचारी, उनके निरंतर देखभाल की आवश्यकता की तनावपूर्ण स्थितियाँ के बीच लेखिका के शरीर में कैंसर के रूप में मौत अपनी दरारें फाड़ती आगे चलती रही किंतु वे जिद्दी जिजीविषा के साथ हुलास से आगे बढ़ती रहीं। लीक से हटकर चलने वाली इस स्त्री में सदा अपने होने का अहसास उबलता रहा और वह छोटी-छोटी आशाओं, उम्मीदों के टुकड़ों से मौत की दरारें पाटती रही। वह मानती हैं कि - ज़िंदगी तुझसे हर कदम पर / समझौता क्यों किया जाए / शौक्र जीने का है मगर इतना भी नहीं / कि मर-मर कर जिया जाए।

अहिल्या मिश्र तो अपनी बीमारी से उबर जाती हैं लेकिन पति में अपनी शारीरिक लाचारी, बीमारियों का मानसिक तनाव व खाने-पीने के परहेजों के कारण जीने की इच्छा कम होती गई। चार्वाक दर्शन के अनुगामी और अपनी शर्तों पर जीने वाले भोगवादी सोच व विलासी स्वभाव को प्रमुखता देने वाले पति कहते, 'मैं जावत जीवेत सुखम जीवेत, ऋणम कृत्वा घृतम पीवेत को अपना जीवन-सूत्र मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि जीवन क्षणिक है। जो मेरा है उसे मैं अपने तरीके से जीऊँगा, भोगूँगा। मेरा जीवन मेरा है, मैं किसी

और के अनुसार इसे क्यों जीऊँ? क्यों न यह मेरी तरह जिए चलो, मैं किसी की आजादी में कोई दखल नहीं देता, तो कोई मेरे सिद्धांतों में भी दखल न दे। मुझे जो पसंद है मैं वही करूँगा।” पति द्वारा खाने-पीने का परहेज छोड़ देने से उनके सेहत में लगातार गिरावट आती गई। स्वयं कैंसर के ईलाज से जूझकर आई अहिल्या जी पति की यह हालत देखकर अत्यधिक मानसिक परेशानी झेलते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आ जाती हैं। और, सारे उपचार के बावजूद पति ने अपने उनहत्तरवें जन्म-दिन के चार दिनों बाद सुबह में परिवार और दुनिया को अलविदा कह दिया। पति-पत्नी के जीवन दर्शन, जीवन मूल्यों में बुनियादी फासला होते हुए भी दोनों रेल की समानांतर पटरियों की तरह बखूबी सांमजस्य बिठाए साढ़े चार दशक तक बिना अवरोध के अपने सफल दाम्पत्य जीवन की गाड़ी चलाते रहे। इस सदमे से अहिल्या जी अपने नाम के समानान्तर अहिल्या-सा पत्थर तो नहीं बनीं किन्तु पथरा अवश्य गईं। रोना वैसे भी उन्हें पसंद नहीं है। एक बार अपनी सहेली से उन्होंने कहाँ था, - मुझे किसी हाल आँसू पसंद नहीं हैं। मेरे मरने पर कोई आँसू न बहाए। मैं अपनी वसीयत में लिख कर जाऊँगी कि मेरे लिए एक समाधि बना देना और उस पर लिख देना कि यह उस स्त्री

की समाधि है जिसने कभी आँसू नहीं बहाए, सदा हंसती रही या चुप रही। क्रोध में आने पर अक्सर फुफकारते हुए दहक उठती थी। अतः यहाँ आकर हंसना ही होगा। रोने से उम्र ही घटती है।” अपनी आत्मकथा में अहिल्या मिश्र अपना जीवन-सूत्र उद्घाटित करती हैं-उत्साह, साहस, दुस्साहस, जिद, कर्म करना, आगे बढ़ना, कल को पीछे छोड़ देना, भुला देना, अपने समय को अतीत पर व्यय होने से बचाना, केवल आगे बढ़ते जाना, रूकना नहीं, थकना नहीं, कुछ अधिक सोचना नहीं, कर जाना जो मन में आए, केवल उसके सही गलत की जाँच अपने सिद्धांतों के अनुसार करना। इस सूत्र को जीने वाली अहिल्या मिश्र को अपने पति को खोने के बाद भी लगा कि उन्हें स्त्री शक्ति का एक उदाहरण बनने की राह पर आगे बढ़ते रहना है। वे लुंज-पुंज होकर पथराई नहीं रह सकती। उन्हें लगा, कोई आवाज दे रहा है, “उठ, देख, मैं जीवन, इस दीवार की दरार से झांक कर तुझे कर्म हेतु आवाज दे रहा हूँ। अभी बहुत कुछ करना शेष है। निर्माण का जखीरा लगा है, तुझे सारे पूरे करने हैं। उठ, चल, उठ, आगे बढ़।” और, अहिल्या मिश्र आगे बढ़ती रहती हैं, सतत, निरंतर, आज भी क्योंकि उन्हें अभी “कुछ दर्द मिटाने बाकी हैं / कुछ फ़र्ज़ निभाने बाकी हैं।”

संपर्क : फ्लैट नं. जे-501, सेवियर ग्रीनआर्क सोसाइटी, एकमूर्ति चौराहा के नजदीक जी. एच.-10 ए, सेक्टर- टेकजोन 4, , ग्रेटर नोएडा (पश्चिम), गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश) 201306 / मो. 9347901419

जागरूक अकेलेपन का जीवंत दस्तावेज- 'तुम नहीं थे'

डॉ. कमल कुमार

'तुम नहीं थे' कविता संग्रह कोलकाता महानगर के सुप्रसिद्ध एवं वरिष्ठ कवि काली प्रसाद जायसवाल का पहला कविता संग्रह है। इन्होंने उम्र के इस पड़ाव पर आकर अपने जीवन के अनुभव को बेहद करीने से इस संग्रह में सजाया है।

श्री कालीप्रसाद जी की कविताएँ जीवन के सत्व को सहजता से हमारे मन में अंकित कर देती हैं। कवि सहज और सरल शब्दों में अपनी कविता के द्वारा पाठक के मन पर सम्मोहक छाप छोड़ता है। इनकी कविताओं में मद्धिम आँच में पकते हुए विचार हैं, जिसमें कवि के द्वारा इस दुनिया के यथार्थ को उजागर करने की कोशिश है। ये कविताएँ अपने समय से संवाद करते हुए भविष्य के प्रति भी हमें उत्सुक बनाती हैं।

मानवीय संवेदना, प्रेम और परिवार के प्रति समाज में व्याप्त असंवेदनशीलता के प्रति संवेदनशीलता एवं अपने होने के एहसास को उजागर करती है।

पर उम्र के ढलते पड़ाव पर
एक दिन पिता मिले
अपने ही सुंदर अपने ही अंदर
किसी से बतियाने को
तरसते
बहुओं के मन की बातें
बेटों के मुँह से सुनते
घुटनों के दर्द से ज्यादा
मन की पीड़ा सहते
और यह कहते
पिता से मुलाकात
बुढ़ापे में होती है।

उत्तर आधुनिक समाज में मानवीय मूल्य और सौहार्द की भावना का क्षय होना, जाति और धर्म की अनर्गल व्याख्या जैसे कई मुद्दों पर जिस बेबाकी से कवि अपनी कविताओं में प्रस्तुत करता है। उससे समाज के प्रति इनकी बेचैनी को आप इन पंक्तियों में समझ सकते हैं :

यह गुम लोगों का शहर
इस शहर में
अपने कीमती पल को ढूँढ़ता
हर शख्स नजर आता

हर शख्स का

कुछ न कुछ गुम हो चुका था।

कवि प्रेममय समाज बनाने की परिकल्पना करता है। यह लोक मंगल की कामना उन्हें अन्य समकालीन कवियों से अलग करती है हो सके तो चांद को भी अपने साथ ले लेना लौट आओगे जल्द तुम यह आकाश से कह देना कभी आए थे तुम भी मेरे घर मेहमान बनकर कहने के लिए दोस्तों से एक यह एक कहानी हो जाए।

मौजूदा समय में प्रेम को जिंदा रखने की जरूरत है। जब पूरा विश्व हिंसा के कठिन दौर से गुजर रहा हो। इस कठिन होते समय में वरिष्ठ कवि काली प्रसाद जायसवाल के प्रेम कविताओं का होना। इस विपरीत समय में हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाती है जो आपकी रूह को चैन देती है। कोलकाता प्रेम, सौंदर्य और उत्साह की जमीन है। जहाँ चिलचिलाती धूप में भी उसके साथ होने का एहसास हमें आश्वस्त ही नहीं करता है, बल्कि आने वाली चुनौतियों से सहजता से सामना कर लेने की ताकत भी देता है।

घर (परिवार) मनुष्य के जीवन के सबसे सुंदर शब्दों में से एक होता है, इस शब्द के साथ मनुष्य की अनेक संवेदना जुड़ी होती है। वह निर्जीव वस्तुओं से बना एक घर नहीं, बल्कि उस घर को सजीव बनाने की क्षमता एक स्त्री में होती है। उसके होने से पूरा घर, जीवंत बना रहता है। जैसे लगता है घर की एक-एक ईंट भी बोलने के लिए आतुर हो। इसी घर के टूटने और उस स्त्री के ना होने की पीड़ा इस संग्रह की कविताओं में स्पष्ट दिखाई देती है। तुम नहीं थे, कौन हो तुम, न बन पायें, तुम्हारे नहीं रहने पर यादें जैसी कई कविताएँ इसे बखूबी प्रस्तुत करती हैं।

काली प्रसाद जी गहरे आलोचनात्मक विवेक

के कवि हैं उनके समुचित कविता में एक क्रिटिकल अप्रोच दिखाई देता है। यह कह सकते हैं कि वे केवल भावता के कवि नहीं। उनके यहाँ व्यंग से भरी बौद्धिकता भी है-

बूढ़े ने कहाँ-

नहीं ऐसा नहीं हूँ

मैं भी बुढ़ापे के रोगों से

त्रस्त हूँ

मुझे भी अकेलापन सताता है

पर मैं वह दिन देखने के लिए

जिंदा रहना चाहता हूँ

जिस दिन मेरा पोता

अपने बाप को

यहाँ छोड़ने आएगा।

इनके कविता की विशेषता यह भी है कि वह प्रेम को परंपरागत नजरिए से नहीं देखते हैं। कविता में प्रेम में खुदा हो जाने की बात करते हैं। कवि मानस की स्वतंत्रता के सर्जक होते हैं, इसलिए कभी प्रेम की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं-

तुम्हारी नहीं रहने पर

यादों के सावन भादों में

भीगता रहता है मन

और इन यादों से

बचा हुआ है

मेरा थोड़ा बहुत जीवन।

इनकी कविता में एक विशेषता यह भी है कि कई बार वे कोई नई बात नहीं भी कहते हैं तब भी उनके कहने का अंदाज बिल्कुल नया होता है। कहने का यही नया अंदाज कविताओं को प्रभावशाली बना देती हैं।

दीया था बाती भी थी

सिर्फ तुम नहीं थे

रोशनी हो न सकी

राजनीति समाज, बाजारवाद और आधुनिकता के प्रभाव से कवि भी अछूता नहीं

रहा है। विकास की अंधी दौड़ में सामान्य आदमी के ऊपर क्या प्रभाव पड़ रहा है वह भी इस संग्रह की कई कविताओं और गजलों में दिखाई देता है। जैसे - जंगल का लोकतंत्र, वे तय करेंगे, आप सरकार हैं, विकास, बुद्ध जैसी कविताएँ समाज के वर्तमान स्वरूप का निष्पक्ष मूल्यांकन करती हैं। इस विषय पर गजल के एक शेर को देखिए-

फिर चुनाव आए है फिर वादे किए गए
फिर सबकी आँखों में कुछ ख्वाब पल गए

एक नवजात बच्ची मिली कचरों में
इंसान के गिरने की हद मत पूछिए।

एकाकी होते परिवार, टूटते संबंधों और माँ-बाप की दयनीय स्थिति का यथार्थपरक चित्रण इनकी इन कविताओं में दिखाई पड़ती है जैसे- पिता का दर्द, धुआँ आँखों से, वह दिन भविष्य, रिश्तों की हकीकत और पिता से मुलाकात जैसी कविताएँ हमें भावुक कर देती हैं।

शिल्प और भाषा के स्तर पर इस संग्रह में संकलित कविताएँ हाइकू, क्षणिकाएँ और गजलें सभी सहज और सरल हैं। कवि शब्दों के चयन के प्रति बेहद सजग है, बनावटी शब्दों से दूर, सपाटबयानी से, लोक के शब्दों का सही प्रयोग इन कविताओं में मौजूद भाव और बिंब का अद्भुत मेल चमत्कृत करता है। इस गज़ल के एक शेर को देखिए-

मन में बहुत सी बातें हैं/ पर हम कहाँ कह

पाते हैं।

कवि ने क्षणिकाओं में भावों का उचित समावेश किया है

नदी के उस पार

सब सुख है

हर आदमी का

बस यही दुख है।

इसके अलावा हाइकू रचना जो शब्दों का अद्भुत चमत्कार है, मात्र सात शब्दों में अपनी बातों को कहना इसकी कला है। कवि ने इस विधा को भी बखूबी साधा है-

पराया कौन

उम्र भर सोचिए

अपना कौन?

मौजूदा समय में प्रेम को जिंदा रखने की जरूरत है, जब पूरा विश्व हिंसा के कठिन दौर से गुजर रहा हो और कठिन होते समय में प्रेम कविताओं का होना इस विपरीत समय में हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाता है जो आपकी रूह को सुकून देता है। कवि काली प्रसाद के जीवन का संघर्ष उनकी कई कविताओं में विभिन्न रूपों में सामने आता है। यह संघर्ष आने वाली पीढ़ियों को सचेत करती रहेगी, उम्र के इस पड़ाव पर इस संग्रह का आना कवि की प्रतिबद्धता दिखाता है। यह संग्रह अपने विविध रचनाओं एवं सहज भाव के कारण कविता जगत में लोकप्रिय होगी, ऐसा मेरा पूरा विश्वास है।

तुम नहीं थे (कविता संग्रह) कालीप्रसाद जायसवाल, आनन्द प्रकाशन कोलकाता

संपर्क : सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग उमेशचन्द्र कॉलेज, 13, सूर्य सेन स्ट्रीट कोलकाता-12

विविध आएमों की कवयित्री : डॉ. मनीषा झा डॉ. वन्दना गुप्ता

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जो परिदृश्य था, उसमें डॉ. मनीषा जी की कविताएँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। समकालीन कवयित्रियों में इनके अनुभव का दायरा बहुत विस्तृत है। मनीषा जी यद्यपि प्रकृति, प्रेम और नारी जीवन संघर्ष की कवयित्री हैं, पर उनकी कविताएँ अपने परिवेश और समय संदर्भों की नब्ज बखूबी टटोलती हैं।

कंचनजंघा भू-भाग के खुरदरे यथार्थ को चित्रित करने का निखालस खाटीपन, कलात्मक अभिव्यक्ति, कथ्य की व्यापकता, भाषा का सधापन इनकी कविताओं की विशेषता है, साथ ही वे प्राकृतिक अंतर्वस्तु के साथ सामाजिक सरोकार और मानवीय संस्पर्शिता को अभिव्यक्त करने में भी सिद्धहस्त हैं। बड़ी गहनता के साथ वे वर्तमान समय की संकटपूर्ण चुनौतियों - भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावादी संस्कृति की जटिलता के यथार्थ को और समय के बदलाव को अपनी रचनाओं में दर्ज करती हैं।

समकालीन हिंदी लेखन की सशक्त हस्ताक्षर मनीषा जी की सृजन यात्रा को दो काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम कालखंड 1996 से लेकर 2007 तक का समय है, जिसमें कवयित्री ने 'शब्दों की दुनिया' नामक काव्य संग्रह की रचना में दो सदियों के बीच संक्रमण बेला की अनुभूतियों को बड़ी बारीकी से उकेरा है।

दूसरा कालखंड 2008 से लेकर 2018 तक का समय है, जिसमें उन्होंने अपने दूसरे काव्य संग्रह 'कंचनजंघा समय' की रचना की जो भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है। इस संग्रह की कविताएँ तीन भागों में विभाजित हैं- कंचनजंघा समय, पेड़ों के साथ, और पानी के पक्ष में।

विविध आएमों की कवयित्री मनीषा जी के दोनों काव्य संग्रह अपने समय और परिवेशगत बदलाव के प्रत्यक्ष गवाह हैं। शब्दों की दुनिया में अधिकतर प्रकृति पर कविताएँ हैं जिसमें चांद, सूरज, छाँव, घास, पेड़, तोते, हुगली नदी, झरना, सावन, बरसात, पत्ते जैसे विषयों पर अनेक कविताएँ हैं। प्रकृति का अनंत विस्तार इस संग्रह की विशेषता है। इसके अलावा स्त्रियों पर अनेक कविताएँ भी इसमें दर्ज हैं। कवयित्री अपने परिवेश में जीती हुई अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को बड़ी बारीकी से अपनी रचनाओं में उकेरती हैं। इनके रचना संसार में कहीं मौसम की मार का दंश झेलते हुए मजदूरों की बेबसी का चित्रण है तो कहीं पहाड़ों के सौंदर्य को नष्ट करने वाले प्रदूषण का भार है। इतना ही नहीं कवयित्री की सूक्ष्म आंकना पैनी दृष्टि में हमारे समाज में स्त्रियों की वस्तुस्थिति व उनके भीतर चल रहे द्वंद्व से उपजी मारक अनुभूतियों को व्याख्यायित करने की क्षमता भी मौजूद है। वे जानती हैं कि परिस्थितियाँ बदली हैं, पर परंपराएँ नहीं। इसलिए हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आए है। पुरुष प्रधान व्यवस्था के जाल से वे अभी भी मुक्त नहीं हो

पाई हैं। अभी भी उसे आर्थिक शोषण, अधिकार हनन, यौन-उत्पीड़न, सामाजिक दमन, नैतिक मानदंड जैसी समस्याओं से जूझना पड़ता है। 'जाल' कविता में हमारे समाज और परिवार में गुलामी, यातना से मुक्ति की छटपटाहट स्त्रियों में दिखाई देती है- "और जब दाना होता है वे भूली रहती हैं/ कि जाल के नीचे है उनका वजूद/ फुदकती रहती हैं यहाँ से वहाँ प्रसन्नचित्त/ जाल के नीचे बस उसी परिधि में/ वही से झाँकती रहती हैं आकाश/ धूप भी हवा से छनकर ही आती है/ जाल के भीतर/ पसरा है संसार वही मनु महाराज के जमाने से।"

इसी प्रकार कवयित्री ने आधुनिक जीवन की जटिलताओं, तनावों व विषमताओं में घिरी होने के बावजूद अपने व्यक्तित्व को निखारने और अपने वजूद की पहचान कायम करने के लिए निरन्तर संघर्ष करती स्त्रियों का चित्रण बखूबी करती हैं।

मनीषा जी मानती है कि आज स्त्रियाँ अपने आत्मसम्मान के प्रति सचेत हैं और निरन्तर संघर्ष कर रही हैं वे लिखती हैं- "जब छीन नहीं सकोगे तुम मेरे रंग/ थक चुके होंगे ताकत अजमाते अजमाते/ तुम शरीक होंगे मेरे उत्सव में/ अच्छाकर-पछताकर ही सही सराहोगे मेरी प्रतिभा।" 'व्यवस्था में' शीर्षक नामक कविता में स्त्रियों की मानसिक घुटन, पीड़ा को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए वे कहती हैं- "मैं उड़ान भरने की रौ में थी/ कि काट लिए गए मेरे पंख/ मैं कुछ कहने को उठी/ कि पड़ने लगी गालियों की बौछार।" नीत्शे ने कहा था कि "स्त्री एक दर्पण है" मनीषा जी ने वास्तव में अपनी रचनाओं में स्त्री जीवन के संघर्ष को बखूबी चित्रित किया है। 'पिटारी', रोजगार, अधेड़ स्त्री, प्रश्न- प्रलय, आऊँगी, उठो कविताएँ, स्त्री को केंद्र में रखकर लिखी गई कविताएँ हैं।

कवयित्री कंचनजंघा प्रदेश के प्रति संवेदनशील है। यहाँ होने वाली अनिश्चितकालीन

हड़ताल, गोरखालैंड आंदोलन, राजनीतिक पार्टियों के उत्थान-पतन से यह प्रदेश बुरी तरह से प्रभावित होता रहता है। जिसका असर यहाँ के चाय बगानों के मजदूर और निम्न वर्ग पर होता है। कवयित्री यहाँ के श्रमिक वर्ग की व्यथा कथा से एकाकार होते हुए यहाँ के सामान्य जन की अभिव्यक्ति बन कहती है - जी हाँ मैं बोल रही हूँ/ कंचनजंघा प्रदेश से/ आपके ही देश से/ हाँ, मैं बोल रही हूँ।" यहाँ होने वाले आंदोलन से प्रभावित आम जनता के हालात पर वे आगे लिखती हैं- ' "तब हो जाता है बुरा हाल/ बंद रहता है जब पहाड़/ सुलगती है कोई आँच/ झुलसने लगता है घर द्वार/ फैल जाता है खुद-ब-खुद/ कोई आंदोलन।"

इसी प्रकार पहाड़ में होने वाले परिस्थिति और परिवेशगत परिवर्तन कवयित्री की संवेदना को गहरे तक कुरेदते हैं। अंधाधुंध विकास के कारण मानव प्रकृति पर जो कुठाराघात हो रहा है, उससे कवयित्री का मन मर्माहत होता है भावावेश में वे कहती हैं "मत छेड़ो? उसकी चमड़ी/ मत काटो उसके केश/ हरियाली के रंग रंग को/ रहने दो सुरक्षित/ चाहे सहनी पड़े कुछ मुश्किल ही।"

कवयित्री के मन मस्तिष्क में पहाड़ों में विलुप्त होती नदियों, जंगल, पशु- पक्षी, पिघलते ग्लेशियर, बादलों की टंकार, यहाँ के जनमानस की पीड़ा में भटकता रहता है। चाय बगानों के मजदूरों के पक्ष में खड़ी, कवयित्री लिखती हैं मजदूर चाय बगानों के माली है। कंचनजंघा मूक साक्षी है मजदूरों के उस योगदान का, जब इन बगानों के प्रारंभिक दौर के बगानों में काम करने के लिए उनके पूर्वजों को लाया गया था और जिनकी कई पीढ़ियाँ इन्हीं बगानों में काम करती आ रही हैं। पर इनकी आर्थिक स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आए है। इन्होंने बगानों से मिलने वाली आए पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वर्तमान में इन मजदूरों के हालातों को देखकर कवयित्री

लिखती हैं कि- “मजदूर है चाय बगानों के/ माली हैं उन पौधों के/ पत्तियों के/ जिसके बिना तुम्हारी तो बात ही नहीं / मेरी भी नहीं/ कोई नहीं रह पाता अब/ देख रहा है सब कंचनजंघा।”

कवयित्री पेड़-पौधे, नदी, पानी, पक्षियों, पत्ते सभी को मानवीय संदर्भ देती हैं ‘पत्ते उठो’ टंड की मार से निष्प्राण पत्तों से संलाप करते हुए वे कहती हैं- “पत्ते उठो/ हिम्मत तो बटोरो/ आँख उठाकर देखो/ जरा अपने डैने झटकाओं / हरकत में आओ।”

प्रदूषण के कारण विलुप्त होती नदियों की एक बानगी देखिए- ‘उसके सिकुड़न की भाषा पढ़ सकते हो!’ कविता में वे लिखती हैं- बह रही है नदी शहर के बीचों बीच / नदी की आँखों में उबाल है/ किनारे है कीच / बताओं / क्या उसके सिकुड़न की भाषा पढ़ सकते हो।”

कंचनजंघा एक तटस्थ योगी सा समय के अंतराल में होने वाले बदलाव प्रकृति के क्षरण का मूक साक्षी है। वह साक्षी है उन प्रकृतिक आपदाओं का जिसके कारण यहाँ का जनजीवन ठप्प पड़ जाता है वे आगे ‘उदासी का छंद’ नामक कविता वे लिखती हैं कि - ‘पिघल जाते हैं ग्लेशियर/ नदियाँ उफन-उफन कर घुस आती हैं घर में/ तबाह हो जाते हैं जान- माल/...समुद्र फट पड़ता प्रलयकारी होकर/ कोई सुनामी कोई हुदहुद/ प्रकट हो जाता अचानक/ खुद-ब-खुद/ चट्टानें दरक जाती/ बिन बताए/ बादल फटकर कर जाते तबाह’।

शशि शर्मा जी लिखती हैं कि “कंचनजंघा समय’ अपने समय का प्रमाणिक दस्तावेज है। ‘स्वच्छ, पवित्र और निर्लिप्त’ विश्व की तीसरी सबसे ऊँची पर्वत चोटी, प्राकृतिक सौंदर्य की प्रतिमान कंचनजंघा’ नियंत्रित होकर सबको देखता है। वह साक्षी है अपने समय के शोर और रफ्तार का, सभ्यता और संस्कृति के आरोह और अवरोह का, मानवता के उत्थान और पतन का।”

मनीषा जी की कविताओं का उद्देश्य बहुत

व्यापक है, वे प्रकृति के माध्यम से जीवन के व्यापक संदर्भों को विशुद्ध बौद्धिक स्तर पर अपनी अलग शैली में स्थापित करती हैं। अपने विशिष्ट उद्देश्य और दृष्टिकोण को साकार करने के लिए वे पहाड़, प्रकृति, मजदूरों के जीवन संघर्ष और स्त्रियों की व्यथा-कथा के माध्यम से वर्तमान जीवन के बहुमुखी यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद की संस्कृति के कारण पर्यावरण और प्रकृति जिस तरह से प्रदूषित हुई। जीवन मूल्यों का हनन हुआ है, उसका प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों पर पड़ा है उस पर कवयित्री लिखती हैं- “यह मर्यादा के टूटने का समय है/ क्योंकि यह अंधा युग है।”

इस बदलाव का खतरा हमारी भाषा के लिए संकट पैदा कर रहा है, संप्रेषण सिर्फ अर्थ ध्वनित करते हैं, संवेदनाओं की तरलता सूखती चली जा रही है। कवयित्री लिखती हैं- व्याख्या, विश्लेषण, वाद और विवाद/ संप्रेषित करते हैं अर्थ/ डूब रहा है छंद का चाँद/ मंद पड़ रहे राग के सितारे। भाषा पर इस तरह का खतरा आने वाले समय में संवादहीनता के संकट को इंगित करता है।

हर व्यक्ति अपने परिवेश विशेष से प्रभावित होता है, चूँकि मनीषा जी की कर्मभूमि दार्जिलिंग, हिमालय डुबार्स क्षेत्र है जो पश्चिम बंगाल का उत्तरी प्रदेश है, यह प्रदेश उनकी भावभूमि बन गई है। यही कारण है कि कवयित्री ने इस क्षेत्र की परिवर्तित स्थितियों, संदर्भों तथा यहाँ के निवासियों की टूटन, दुख-दर्द, आपदाओं और आंदोलनों के कारण क्षत-विक्षत मानसिकता, आलोड़न-विड़ोलनों की गहरी पहचान अपनी कविताओं में प्रस्तुत की है। इस क्षेत्र के प्रति अपने रागात्मक लगाव के कारण कवयित्री ने नए बिंबों, ध्वनि संकेतों, नए शब्द-प्रयोगों से इस क्षेत्र विशेष के अनेकाविध दृश्यों का समयोजन बड़ी कुशलता से किया है। बरसात के मौसम में कंचनजंघा बस्ती के बारिश से ऊबे हुए लोगों के

लिए धूप की कामना करती हुई कवयित्री की कविता का एक चित्र बिंब देखिए- “मोड़ कर रख दो कहीं/ मेघ की छतरी / बिखरने दो जरा/ धूप की गगरी/” वे आगे लिखती हैं- “माना कि है जरूरी/ बारिश का पानी/ चाहिए अभी तो / धूप कुरकुरी।”

वे दार्जिलिंग के पदतल में महानंदा अभयारण्य से चलने वाली Toy train और विहार के लिए निकले हाथियों के झुंड के उपद्रव के चित्र बिम्बों के माध्यम से वर्तमान विसंगतियों का खाका खींचती हैं- “पसंद है उसे बादलों का गर्जन/ हाथियों की चिघांड/ खिलौना गाड़ी का रौंदते हुए चले जाना / और निहारना कंचनजंघा का।”

दूसरी बानगी देखिए - “मदमस्त हाथियों के दल की तरह/ वे/ बारी-बारी से कुचलकर/ चले गए तो क्या हुआ... तुम्हारे दुपट्टे में मढ़ी? लताएँ/ अधखिले फूल/ फूटना चाहते हैं/ कसूर कहानी में।”

कवयित्री बड़ी सूक्ष्मता से क्षेत्र विशेष के परिदृश्य के माध्यम से स्त्रियों के साथ घटने वाली अमानवीय घटनाओं को चित्रित कर उन्हें अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती हैं।

इतना ही नहीं इन विसंगतियों के दौर में वे प्रेम जैसे विषय पर लिखना नहीं भूलतीं- “प्रेम दरअसल/ पेड़ पर/ पक्षी का घोसला है/ प्रकृति और पहाड़ का साहचर्य/ और घोसला बनाने का/ संविधान नहीं होता।”

प्रेम पर ये छोटी सी कविता अपने कलेवर में एक बड़ा दर्शन पिरोए है, ऐसी बहुत सी छोटी-छोटी कविताएँ अपने अंदर गहरे अर्थ ध्वनित करती हैं, और जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

पहाड़ों में होने वाले ढेंकी साग को बेचकर परिवार का पेट भरने के लिए बड़े भुनसारे साग चुनने वाली स्त्रियों के प्रति उनकी गहरी संवेदना है। इन स्त्रियों, लड़कियों का एक चित्र उनकी सूक्ष्म आंकना दृष्टि से इस तरह उजागर होता है- “और भोर होते ही कुछ लड़कियाँ / कुछ महिलाएँ/ चुनने ढेंकी साग पहाड़ी घास-पात के घने जंगल में/ चुनती रहती हैं सुबह के/ आठ बजे तक।”

इतना ही नहीं कवयित्री ने खनन माफियाओं द्वारा हो रही खुदाई से प्रकृति के दोहन, चाय बागानों के मजदूर के शोषण, उनके श्रम और संघर्ष, प्रकृति पर होने वाली अमानवीय छेड़छाड़ से आने वाली प्राकृतिक आपदाओं के विभिन्न संदर्भों, प्रकृति के सौंदर्य और सादगी को चित्रित किया है। शायद ही कोई क्षेत्र वंचित रह गया है कवयित्री के संवेदन चक्षुओं से, पर अगर एक दृष्टि वे यहाँ के युवाओं पर भी डालती तो उचित होता, क्योंकि पहाड़ पर होने वाले आंदोलनों की मार का असर सबसे ज्यादा युवा वर्ग पर ही पड़ा है।

‘शब्दों की दुनिया’ और ‘कंचनजंघा समय’ काव्य संग्रह कवयित्री के बहुमुखी प्रतिभा के प्रमाणिक दस्तावेज हैं, जिसमें उनकी संवेदना के विस्तृत स्वस्त्रों का साक्षात्कार होता है। मनीषा जी प्रकृति की कवयित्री हैं लेकिन स्त्री जीवन संघर्ष, प्रेम के प्रति उदासीन नहीं है। दोस्तोव्स्की ने भविष्यवाणी की थी, कि “सुंदरता संसार को बचाएगी” मनीषा झा की कविताएँ सृष्टि के सौंदर्य को बचाए रखना चाहती हैं ताकि संसार में सौंदर्य के साथ साथ मानवीयता बरकरार रहे। अनूठे बिम्बों, विषयों की विविधता, नए तेवर लिए हुए उनकी कविताएँ समकालीनता के विविध आएँों को बड़ी बरीकी से प्रस्तुत करती हैं।

संपर्क : ब्लॉक 2, पांचवा तल, दागापुर, सिलीगुड़ी, जिला-दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल,
पिन कोड 734003

शतवर्ष में रेणु

डा. पंकज साहा

प्रेमचंद के बाद दूसरे बड़े कथाकार के रूप में मान्य फणीश्वरनाथ रेणु ने 1944 से लिखना शुरू किया था। दस वर्षों के बाद वे विशेष चर्चा में तब आए, जब उनका 'मैला आँचल' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास ने उन्हें प्रसिद्धि भी दिलाई और विवादित भी बनाया। प्रसिद्धि और विवाद के दो घाटों के बीच रेणु की चर्चा मंथर गति से बहने वाले जल के समान होती रही। लेकिन 2020 से उस जल के बहाव में अचानक गति आई और उनपर चर्चाओं की बाढ़ आ गई। 2021 रेणु का जन्म शतवर्ष है। शताब्दी संस्मरण के रूप में दो दर्जन से भी अधिक पत्रिकाओं ने उनपर केंद्रित अंक या विशेषांक निकाले हैं। इनके अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने उनपर लेख छापे हैं। अनेक संस्थाओं द्वारा उनपर वेब-संगोष्ठियाँ आयोजित की गई हैं। आश्चर्य इस बात पर हो रहा है कि विगत 65-66 वर्षों में उनपर जितनी चर्चाएँ हुई हैं, उससे कहीं अधिक चर्चाएँ इस कोरोनाकाल में हुईं। जितनी पत्रिकाएँ मैंने देखी हैं, उनमें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि क्या वामपंथी, क्या दक्षिणपंथी और क्या मध्यमार्गी, सभी लेखकों ने सुर में सुर मिलाकर रेणु की रचनात्मकता, उनकी आँचलिकता, उनकी भाषा, उनके शिल्प आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

प्रेम सिंह ने अपने 'मैला आँचल में क्रांतिकारी विचार' लेख में लिखा है, "आज तक एक भी मार्क्सवादी आलोचक ने 'मैला आँचल' सहित रेणु के कथा-साहित्य की रचनात्मक उपलब्धियों को स्वीकार नहीं किया है।" और किशन कालजयी का मानना है कि 'प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा ने "प्रेमचंद की परंपरा और आँचलिकता" शीर्षक लेख लिखकर सीमित प्रशंसा के बावजूद रेणु को लगभग खारिज कर दिया। आगे रामविलास जी की बनायी लकीर को ही उनके अधिकांश अनुयायी पीटते रहे।"

मार्क्सवाद तो पत्थर की लकीर है, वह अपना सिद्धांत बदल नहीं सकता। तो क्या मार्क्सवादी लेखक शनैः शनैः अपनी विचारधारा बदल रहे हैं? क्या वे गांधीवादी विचारधारा में तल ढूँढ़ रहे हैं? वैसे दिनकर जी का मानना है कि "जो आदमी मार्क्स के यहाँ से घबराकर भागेगा, वह गांधी के यहाँ भी त्राण नहीं पा सकता है।" परंतु रेणु केंद्रित अंक/विशेषांक कुछ और ही कहानी बयाँ कर रहे हैं।

रेणु के प्रति मार्क्सवादी लेखकों में आम असहमति होने के बावजूद अधिकांश लेखकों ने रेणु के राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ पर उदारतापूर्वक चर्चा की है, जबकि राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ का आईना दिखाने के कारण ही प्रेमचंद और रेणु सदा कुछ वामपंथी आलोचकों के निशाने पर रहे हैं।

लेकिन जैसे कोई कलाकार अपनी कलाकारी नहीं भूलता, वैसे ही कुछ

विशुद्ध मार्क्सवादी लेखकों एवं कुछ तथाकथित प्रगतिशील लेखकों के लेखों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से उनका बारीक छल स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार के कुछ लेखकों ने बड़ी चालाकी से रेणु द्वारा उद्घाटित राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ को गोल कर दिया एवं उनके स्थान पर उनकी भाषिक ध्वनि, नाद, बिंब, कला आदि की चर्चा कर उनकी यथार्थ दृष्टि से पाठकों का ध्यान भटकाकर रूपवाद पर पाठकों के लोचन को उलझाने का प्रयास किया है। जबकि “वे (रेणु) जीवन के यथार्थ को कलात्मक यथार्थ में रूपांतरित करने की प्रक्रिया में रचना-सामग्री के साथ अधीनस्थ जैसा व्यवहार नहीं करते, जैसा कि अपने-अपने ढंग से अज्ञेय और यशपाल करते हैं और जिसका नतीजा क्रमशः स्वेच्छवादी कलावाद और मतवादी उपयोगितावाद में निकलता है।”

इस संदर्भ में सबसे उल्लेखनीय नाम सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक डा. रविभूषण का है। ‘बनास जन’ के रेणु विशेषांक में प्रकाशित उनके लेख का शीर्षक है—‘रेणु साहित्य में बजते वाद्ययंत्र’ और ‘संवेद’ के रेणु विशेषांक में प्रकाशित उनके लेख का शीर्षक है—‘स्वप्नभंग और लोक संस्कृति की विदाई (तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम)।’ इसमें कोई दो मत नहीं है कि दोनों लेख बेजोड़ हैं एवं मार्क्सवादी आलोचकीय दृष्टि के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

‘बनास जन’ में प्रकाशित अपने लेख में उन्होंने रेणु को संगीतधर्मी कलाकार सिद्ध करने में बहुत परिश्रम किया है एवं उनके उपन्यासों, कहानियों के ध्वनिमय शब्द, ताल एवं नाद; संगीतमय, गद्यमय, रूपमय, सौंदर्यमय संसार का विस्तार से वर्णन किया है। निष्कर्ष स्वरूप उन्होंने लिखा है, ‘रेणु जैसे बता रहे हों—वाद्ययंत्र को बजते हुए सुनो, उसकी ध्वनियों को समझो, हृदयंगम करो। यह संसार ध्वनिमय है, गंधमय

है, लय युक्त और संगीत युक्त है। रेणु ने उसे केवल सुना नहीं जिया भी है और हम? क्या रेणु शतवार्षिकी में इसे नहीं सुना जाना चाहिए?”

अवश्य इसे भी सुना जाना चाहिए, परंतु किस स्तर (Level) पर? लघु (Micro) स्तर पर या वृहत् (Macro) स्तर पर? इस लेख में रविभूषण जी लिखते हैं, “आलोचक से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह रचना का पाठन-अध्ययन सूक्ष्मता से करे। ऐसा न होने पर रचना की समझ और पहचान उसकी संपूर्णता में नहीं हो पाती। रेणु का कथा-संसार ध्वनिमय, गंधमय, रूपमय है।”

दरअसल यहाँ रविभूषण जी सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान एवं मार्क्सवादी आलोचक टेरी ईगलटन की भाषा बोल रहे हैं। “मार्क्सवाद और आलोचना”, ‘आलोचना का कार्य’ आदि उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना के संदर्भ में लिखा है, “मार्क्सवाद आलोचना ‘साहित्य का समाजशास्त्र’ भर नहीं है। उसका उद्देश्य साहित्यिक कृति की अधिक पूर्णता के साथ व्याख्या करना है, जिसमें उसके रूप, शैली और अर्थ के प्रति अधिक संवेदनशील सावधानी होती है।”

प्रेमचंद ने ‘साहित्य का उद्देश्य’ नामक अपने भाषण/लेख में कहाँ है, “साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सच्चाइयों का दर्पण हो। फिर आप उसे जिस चौखट में चाहें, लगा सकते हैं—चिड़े की कहानी और गुलेबुलबुल की दास्तान भी उसके लिए उपयुक्त हो सकती है।”

रेणु के कथा-संसार की सचाई क्या है? संक्षेप में कहें तो वह है—“सामाजिक आर्थिक न्याय के लिए संघर्ष। और इन सभी पहलुओं से जुड़ी व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समूह और समूह-समूह के बीच अंतःक्रिया (Interaction) से उत्पन्न सहयोग, संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की प्रक्रियाएँ।”

यही रेणु के कथा-संसार की मुख्य ध्वनि, मुख्य गंध, मुख्य रूप है। अधिकांश मार्क्सवादी आलोचक साहित्य की आंतरिक संरचना पर दृष्टि नहीं डालते और न ही भारतीय परंपरा, मानवीय संवेदना, उच्च मानवीय धर्म को महत्व देते हैं। वे सारे संबंधों को केवल आर्थिक तुला पर तौलते हैं और रचना के मूल कथ्य को अपनी विचारधारा के अनुकूल पटरी पर ले जाते हैं। सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डा. रामविलास शर्मा भी इस मामले में पीछे नहीं हैं। प्रेमचंद की 'मंत्र-2' कहानी में बूढ़ा भगत, डा. चड्ढा की अमानवीयता के बावजूद बिना अर्थ, यश की आकांक्षा के उसके एकमात्र पुत्र की जान अपनी मंत्र-शक्ति से बचाता है और तुरंत वहाँ से गायब हो जाता है। परंतु रामविलास जी को बूढ़े भगत की मानवता दिखाई नहीं दी और न ही कोई संवेदनात्मक ध्वनि सुनाई पड़ी। उन्होंने कहाँ कि बूढ़ा भगत वहाँ ईनाम पाने के लोभ से गया था। इसी तरह निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' पर टिप्पणी करते हुए वे विभीषण पर आरोप लगाते हैं कि वे लंका की सत्ता पाने के लोभ से राम से मिल गए थे। जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विभीषण के उस कृत्य को 'विश्वधर्म' का पालन बताया है।

'संवेद' में छप्पे अपने लेख में रविभूषण जी 'तीसरी कसम' कहानी की भाषा पर ध्यान आकृष्ट कराते हुए लिखते हैं, "कहानी में जिस शब्द-विशेष का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, वह शब्द 'इस्स' है। कहाँनियों के बीज शब्दों (की-वर्ड्स) की खोज और उनपर विचार हिंदी में नहीं के बराबर है। 'तीसरी कसम' में 'इस्स' 16 बार प्रयुक्त हुआ है। 15 बार हिरामन द्वारा और केवल एक बार केवल एक पात्र धुन्नी राम द्वारा।"

रविभूषण जी की इस खोज एवं स्थापना से असहमत होने का कोई प्रश्न ही नहीं है, लेकिन जब वे लिखते हैं, "हीराबाई हिरामन के

लिए 'औरत' कम, 'चंपा का फूल' अधिक है। यहाँ 'स्वप्न' 'यथार्थ' से बड़ा ही नहीं, प्रभावशाली भी है।" तो उनका मार्क्सवादी एजेंडा प्रकट हो जाता है। अनुकूल सामाजिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक सच्चाइयों को छिपा लेना भी मार्क्सवादी एजेंडे में शामिल है।

भारतीय हिंदू समाज जाति आधारित है। यह जाति-प्रथा वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है। हिंदी के सारे प्रगतिशील लेखक कमोबेश इस प्रथा के विरोधी रहे हैं। प्रेमचंद और रेणु के साहित्य में भी इस प्रथा का अप्रत्यक्ष विरोध एवं प्रत्यक्ष असंतोष है। 'बनास जन' में शंभुगुप्त ने लिखा है, "रेणु अपनी विशफुल थिंकिंग के बतौर यत्किंच एक जातिवादी सोच से रहित समाज बनाने की कोशिश यत्र-तत्र करते हैं, लेकिन वह एक स्वप्न या शुभाषंसा से आगे नहीं बढ़ पाती। एक बद्धमूल संस्कार और स्वभाव की तरह जाति हमारा सबसे काम्य उपक्रम है; कोई लेखक आखिर कहाँ तक कोशिश करे। हमें सब-कुछ मंजूर है, बस जातिवादी शुद्धता बनी रहे। सवर्ण जातियों का यह दुराग्रह जाति-व्यवस्था के बने रहने का असल आधार है, अन्यथा बी. आर. आंबेडकर ने तो पूरी एक किताब लिखकर बताया था कि हिंदू-समाज से जाति-व्यवस्था कैसे खत्म हो सकती है।"

शुक्र है शंभुगुप्त एवं कुछ अन्य लेखकों ने रेणु की जाति-चिंता, जातिगत नवजागरण, राष्ट्रवादी चिंतन, नारी शोषण, किसान-मजदूर शोषण आदि पर ईमानदारी से लिखा है। कुछ लेखकों ने रेणु की हिंदू सांप्रदायिक-चिंता का उल्लेख किया है, परंतु आश्चर्य है कि किसी भी लेखक ने रेणु की मुस्लिम सांप्रदायिक-चिंता का उल्लेख नहीं किया है। प्रेमचंद और रेणु दोनों हिंदू सांप्रदायिकता से जितने चिंतित थे, उतने ही मुस्लिम सांप्रदायिकता से भी। कुछ हिंदुओं

की सांप्रदायिक सोच जहाँ भारतीय समाज के लिए चिंतादायक है, वहीं कुछ मुस्लिमों की वर्चस्ववादी सोच एवं जेहादी मानसिकता आज पूरे विश्व के लिए चिंता का सबब बन गई है। यह आकस्मिक नहीं है कि 'हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा' लिखने वाले महान शायर डा. इकबाल आगे चलकर 'मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा' लिखते हैं।

प्रेमचंद एवं दिनकर के कुछ लेखों एवं रेणु के 'मैला आँचल' में मुस्लिमों की सांप्रदायिकता एवं विस्तारवादी सोच देखने को मिलती है। 'मैला आँचल' में देश-विभाजन के समय लोग सोचते हैं, "बड़े भाग से मेरीगंज बच गया। दस मुसलमान भी होते, तो पाकिस्तान ले कर ही छोड़ता।"

हमारे देश में मुसलमानों का मुद्दा नेताओं के लिए अत्यंत संवेदनशील है, क्योंकि वे उनके वोट-बैंक होते हैं। परंतु मार्क्सवादी, जनवादी, प्रगतिवादी लेखकों को तो छोड़ ही दीजिए तथाकथित सेकुलर लेखक भी इस मुद्दे पर कुछ भी लिखने से बचते नजर आते हैं। शायद उन्हें अपने चेहरे से सेकुलरिज्म का मुलम्मा झर जाने का डर होता है। अस्तु, रेणु अंकों में अगर रेणु की ऐसी दृष्टि पर कोई लेख नजर नहीं आए, तो आश्चर्य नहीं हुआ। हाँ, रेणु की राजनीतिक दृष्टि को भी पक्षपातपूर्ण नजरिये से दिखाने पर आश्चर्य जरूर हुआ।

'मुक्तांचल' के रेणु विशेषांक के अतिथि संपादक मृत्युंजय पांडेय ने अपने संपादकीय में रेणु के 'इतिहास, मजहब और आदमी' कहानी का जिक्र करते हुए लिखा है, 'इस कहानी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' का भी जिक्र है। रेणु इसे भारत के लिए एक खतरा के रूप में देखते हैं। यह दल आपदा के समय दिखाई नहीं देता। भूखे और बीमार मुल्क में किसी को धर्म के नाम पर कैसे लड़वाया जाता है, इसका जीवंत उदाहरण

है 'इतिहास, मजहब और आदमी'। रेणु का 1947 का डर आज सच हो गया है। आज देश पर 'कालीवर्दी' राज कर रही है। उसके इशारे पर देश चल रहा है।" कालीवर्दी से उनका क्या आशय है, स्पष्ट नहीं है। कालीवर्दी कमाँडो पहनते हैं या आतंकवादी। लेकिन इनका शासन तो हमारे देश में नहीं है।

इस देश में स्वयं को सेकुलर साबित करना बहुत आसान है। बस, हिंदू-धर्म, हिंदू-आस्था, हिंदू-संगठन पर प्रहार करना, उनकी बुराई करना या कम-से-कम उनके प्रति अपनी असहमति दर्ज करना भर होता है। प्रेमचंद और रेणु यही पर चूक गए। उन्होंने निरपेक्ष होकर सामाजिक, राजनीतिक सच का आईना दिखाया। इसलिए वे बहुतांश की आँखों का काँटा बन गए। रेणु ने अगर आर.एस.एस. पर कटाक्ष किया है, तो छद्म कांग्रेसियों एवं वामपंथियों को भी क्लीन चिट नहीं दी है। वे खुद सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता थे, परंतु उसके छद्म का भी उन्होंने उद्घाटन किया है। इस संदर्भ में 'संवेद' के संपादक किशन कालजयी ने अत्यंत दिलेरी से लिखा है, "रेणु को जब-जब अवसर मिला, उन्होंने सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस की आलोचना की। नेहरू पर भी उन्होंने व्यंग्य लिखा। उन्होंने एक नाटिका 'उत्तर नेहरू चरित्रम' शीर्षक से लिखी है। अपनी रचनाओं में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की तीखी आलोचना की, आलोचना तो उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी की भी की, जिसमें वे स्वयं कार्यकर्ता थे।"

थोड़ी दिलेरी 'बनास जन' के संपादक पल्लव ने भी दिखाई है। अपनी बात में उन्होंने लिखा है, "21 अप्रैल, 1970 को तत्कालीन राष्ट्रपति वाराह वेंकट गिरि ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया था। 1975 में आपातकाल के विरोध में राष्ट्रपति को पत्र लिखकर यह सम्मान लौटा दिया।"

ऐसी दिलेरी मृत्युंजय पांडेय नहीं दिखा पाए। स्वयं को सेकुलर एतदर्थ प्रगतिशील दिखाने के व्यामोह में उन्होंने 'इतिहास, मजहब और आदमी' की गलत व्याख्या की है। इस कहानी में कहीं भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिक्र नहीं है। हाँ, 'मुस्लिम नेशनल गार्ड' के साथ-साथ 'राष्ट्रीय सेवक दल' की चर्चा अवश्य की गई है। इसमें 'काली टोपी' की चर्चा है, तो 'नोवाखाली' की भी है। इसमें 'लक्ष्मी मैया की जय' है, तो 'पाकिस्तान की जय' भी है। इसमें जमींदारी-प्रथा का विरोध जरूर है, पर धर्म के नाम पर लड़वाने का कोई जिक्र नहीं है। परंतु हाय रे सेकुलर व्यामोह! यह सरासर आलोचकीय बेईमानी है। जीवन सिंह राजस्थान जलेस के अध्यक्ष हैं। 'बनास जन' में 'रेणु की कहाँनियाँ और जीवन रस' विषय पर उनका विस्तृत लेख है। इसमें उन्होंने बिना किसी एजेंडे के अत्यंत ईमानदारी से रेणु की कहाँनियों पर विचार किया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "सच तो यह है कि रेणु जिस तरह से हिंदी कहानी में अपना एक अलग अंचल प्रस्तुत करते हैं, उसे वे ही प्रस्तुत कर सकते थे। इसलिए उनकी आंचलिकता रूपधर्मी न होकर वस्तुधर्मी है, जो सिर्फ भाषा को आंचलिक बना देने से नहीं आती।"

'संवेद' में सुप्रसिद्ध समीक्षक मधुरेश ने रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' के संदर्भ में कहाँ है, "जिन लोगों ने रेणु की अतिरंजित प्रशंसा की है, वे अधिकतर राजनीतिक दृष्टि से लोहियावादी और इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'परिमल' से जुड़े लेखक थे। धर्मवीर भारती के वक्तव्य की तब खास तौर से चर्चा हुई थी। उन्होंने विद्यापति के बाद मिथिला की धरती से, वैसी ही सघन और प्रगाढ़ प्रेम-संवेदना के लेखक

के आविर्भाव की बात कही थी।"

कतिपय रेणु विशेषांकों एवं उनपर केंद्रित अन्य अंकों से गुजरते हुए मैंने पाया कि अपनी छिपी, अधखुली, खुली या निरपेक्ष विचारधारा के बावजूद लेखकों ने रेणु की प्रशंसा में कंजूसी नहीं की है। निरपेक्ष विचारधारा के पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने 'मुक्तांचल' में 'रेणु के महत्व' पर विचार करते हुए 'मैला आँचल' के संदर्भ में स्पष्ट शब्दों में कहाँ है, "यदि रेणु के इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद हो चुका होता, तो मेरा यह विश्वास है कि 'मैला आँचल' नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर सकता था।"

रेणु विशेषज्ञ डा. भारत यायावर ने उपर्युक्त रेणु विशेषांकों एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। उन्होंने रेणु के जीवन एवं साहित्य-कर्म के विविध रंगों को उद्घाटित किया है।

प्रेमचंद और रेणु के केंद्र में है—मानवता और सहृदयता। प्रेमचंद की तरह रेणु भी मनुष्य की दुर्बलता में उसकी शक्ति खोज लेते हैं। दोनों के पात्र जीवन-संग्राम में पराजित होते भी हैं, तो भी जीवन की संभावनाएँ मरती नहीं हैं। दोनों के पात्रों के चेहरे भले अलग हों, पर मानवीय मूल्य अलग नहीं हैं। आज का युग मूल्यों के विघटन का युग है। भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, गांधीवाद आदि मूल्यहीन होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में रेणु शतवर्ष के बहाने ही सही, रेणु के साहित्यिक मूल्यों की स्थापना हेतु एवं एक सामाजिक जीवन-दृष्टि प्रदान करने हेतु पत्रिकाओं के विभिन्न विशेषांकों, अंकों एवं वेब-संगोष्ठियों द्वारा उनके समग्र साहित्य के मूल्यांकन के जो कार्य हुए हैं एवं हो रहे हैं, वे निश्चित रूप से अत्यंत मूल्यवान हैं।

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर-721305

(पं. बंगाल), मो. 9434894190

अंतरराष्ट्रीय मीडिया में कोविड -19 महामारी की रिपोर्टिंग देवेश पाण्डेय, डॉ. अजय कुमार सिंह, सोनिया बत्रा

शोध-सारांश

चाइना के एक छोटे से शहर वुहान में कोरोना वायरस का संक्रमण फैला था। शायद ही तब किसी ने सोचा होगा की एक देश के छोटे से प्रांत में उभरी यह बीमारी एक दिन महामारी का रूप लेगी। विश्व इसके जद में होगा। यही नहीं विश्व के आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, और धार्मिक के साथ तमाम इकाइयाँ इसके सामने घुटने टेक देगी। शुरू में यह किसी हॉलीवुड के फिल्म की पटकथा जैसी प्रतीत हो पर वर्तमान का सत्य यही है। इस बीमारी के चपेट में आने से शायद ही विश्व का कोई कोना बचा है। नवंबर-दिसंबर माह में इस बीमारी की शुरुआत चाइना में हुई है और महज़ पाँच महीने के छोटे से अंतराल में ही यह बीमारी विश्व के तमाम देशों को अपने प्रभाव में ले ली। आठ अरब में 20 करोड़ कम जनसंख्या वाला यह विश्व इस बीमारी को लेकर हतप्रभ है। क्या करें, क्या न करें? इस बीमारी से कैसे लड़ा जाए? कैसे रोका जाए? ऐसे अनगिनत सवाल हैं जिनका जवाब एक गंभीर चुनौती बना हुआ है। विश्व की आबादी एक अनजान खतरे की डर से घरों में कैद है। सड़कें सुनसान हैं। रेल के पहिए रुक गए हैं। आसमान में उड़ने वाले विमान जमीन पर खड़े हैं। कुल मिला कर ज़िंदगी थम सी गई है। जब देश और समाज मुश्किल हालात से गुजरता है तब जन-संचार माध्यमों की भूमिका बढ़ जाती है। अनिश्चितता के वातावरण में सूचना ही वह संजीवनी है जो लोगों को राहत देने का काम करती है। उनके व्याकुलता की वजह बताती है। भारत समेत विश्व के तमाम जन-संचार के माध्यम सूचना और मनोरंजन के मसीहा बने हुए हैं। इस वैश्विक महामारी का असर विश्व के हर क्षेत्र पर पड़ा है। यह दीगर बात है कि कोई क्षेत्र विशेष हो सकता है कि इससे ज्यादा प्रभावित हुआ हो और कोई दूसरा क्षेत्र इससे कम प्रभावित हुआ हो। ऐसा तो बिलकुल नहीं है कि कोई क्षेत्र इससे छूटा है। इस महामारी का क्षेत्रवार विश्लेषण किया जा सकता है। हर क्षेत्र को छू पाना तो संभव नहीं है। हाँ इतना जरूर है कि कुछ क्षेत्र पर इस महामारी के प्रभाव का विश्लेषण किया जा सकता है। खास कर घरेलू हिंसा और पर्यावरण दो ऐसे क्षेत्र हैं जिस पर मुख्य धारा के जन संचार माध्यम कम ध्यान देते हैं।

आर्थिक

विश्व की अर्थव्यवस्था इस महामारी के कारण हिल गई है। एशिया, यूरोप, अमेरिका हर महाद्वीप के देश प्रभावित हैं। बड़ी आर्थिक महाशक्तियाँ आने वाले आर्थिक चुनौतियों से लड़ने का रास्ता तलाश रही हैं। कोरोना वायरस संक्रमण के बाद हर सामग्री के बाज़ार मूल्य नीचे आ रहे। कॉपर, आयरन और

सोने की माँग वैश्विक स्तर पर कम हो रही है। अमेरिका के लेबर विभाग के अनुसार पिछले दो सप्ताह के अंदर नए बेरोजगारों की संख्या सबसे ज्यादा दर्ज की गई है। जो कि 10 मिलियन के करीब है। 2000 में जो मंदी आई थी उसे दो साल का वक्त लगा था। 2007 और 2009 में जो मंदी आई थी उसे एक साल समय लगा था। यह मंदी बड़ी है क्योंकि यह झटके के साथ आई है।¹ महज़ एक महीने में ही इसने विश्व की अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख दिया है। विश्व की सरकारें अपनी अर्थव्यवस्था को बंद किए हुए हैं। डर है कि कहीं अर्थव्यवस्था के लिए काम करने वाले लोग इस महामारी की चपेट में न आ जाए। इस बार की आर्थिक मंदी इसलिए पिछले मंदियों की तुलना में ज्यादा गंभीर है। कोरोना वाइरस को देखते हुए बिजनेस को रोकने के लिए कह दिया गया है। बड़े-बड़े इकाइयों में ताला लग गया है। लोग घरों में बंद हैं। पूरी तरह अनिश्चितता का माहौल है। यह अपनी तरह का अनोखा आर्थिक बदहाली है। शायद ही किसी ने इस तरह की मंदी की कल्पना की होगी। कुछ तबकों में इसकी तुलना 1933 के महामंदी से की जा रही है। यहाँ तक की इसे उससे भी ज्यादा गंभीर बताया जा रहा है। कुछ आर्थिक क्षेत्रों पर इसका प्रभाव काफी व्यापक होगा। खास करके खुदरा बाज़ार, मनोरंजन बाज़ार, हॉस्पिटैलिटी और रेस्तरां के साथ पर्यटन उद्योग बुरी तरह प्रभावित होंगे। इस बीमारी का सबसे ख़तरनाक परिणाम यही है जो सामने आए है। विश्व के अर्थशास्त्री इस बात से जूझ रहे हैं कि इस आर्थिक बदहाली को किस तरह का माना जाए। यह ज आकार का आर्थिक मंदी, छ आकार का आर्थिक मंदी या ख आकार का आर्थिक मंदी है। जहाँ ज आकार के आर्थिक मंदी का सवाल है यह मंदी नीचे जा कर जल्दी ऊपर आ जाता है।

वही छ आकार का मंदी ज्यादा समय लेता है। जबकि ख आकार का मंदी लंबे समय तक अर्थव्यवस्था के नीचे रहने के प्रतीक है।² जैसा की इनके आकारों से भी प्रतीत होता है। हज़ारों की संख्या में नौकरियों का जाना आर्थिक मंदी का प्रतीक है। होटल उद्योग, एयरलाइन उद्योग, टूरिज़्म उद्योग में हज़ारों लोगों ने नौकरी गवाई है। तेल की माँगों में 6 प्रतिशत की गिरावट दर्ज कर दी गई है जो कि पिछले 18 साल में सबसे कम है। नए विश्लेषण यह बताते हैं कि हाउसिंग मार्केट में 35 प्रतिशत की गिरावट हो सकता है। बड़ा सवाल यह भी है कि एक बार जब यह महामारी थम जाती है तो उपभोक्ता फिर से कब आम दिनों की तरह ख़रीदारी करना शुरू करते हैं।³ जिस तरह से यह महामारी फैली है जिन वज़हों से इस महामारी से बचाव किया जा सकता है, इसके आधार पर यह कहाँ जा सकता है कि शायद ही लोग जल्दी बड़े मॉल की तरफ़ रुख़ करें। आम लोगों के अंदर सामाजिक दूरी को लेकर चेतना बढ़ी है जो आने वाले समय में मॉल के व्यवसाय पर भी पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि सब जगह तस्वीरें एक जैसी ही हैं। कुछ ऐसे भी आर्थिक क्षेत्र हैं जिन को इस महामारी के कारण फ़ायदा होता दिख रहा है। स्वास्थ्य क्षेत्र, तकनीकी से जुड़े क्षेत्र और ऑनलाइन व्यापार की बढ़ाने की पूरी संभावना है।⁴ जिस तरह से इस महामारी ने लोगों के अंदर डर पैदा किया है, इसकी पूरी संभावना है कि आने वाले समय में हेल्थ इंश्योरेंस जैसे क्षेत्र में बढ़ोतरी होगी। स्वास्थ्य से जुड़े उत्पादों की माँग भी बढ़ेगी। हेल्थ और हाइजीन से जुड़े उत्पादों की बिक्री बढ़ेगी। दूसरी तरफ़ ऐसी तकनीक का भी प्रयोग बढ़ेगा जो आपस में लोगों को जोड़ने का काम करता है। जो घरों से काम करने की सहुलियत मुहैया करवाती है।

साथ ही घर बैठे व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र से जोड़ने वाले ऐप की भी माँग बढ़ेगी। इस क्षेत्र में अच्छी-ख़ासी बढ़ोतरी देखने को मिल सकती है। ऑनलाइन व्यापार में सबसे ज्यादा बढ़ोतरी देखने को मिल सकती है।

इसकी प्रबल संभावना है। लोग घर बैठे ही सामाजिक दूरी का पालन करते हुए सामान की ख़रीदारी करना चाहेंगे।

ऐसे में ऑनलाइन व्यापार विकल्प के रूप में सामने होगा। पूरी संभावना है कि ऑनलाइन व्यापार पहले की तुलना में काफी ज्यादा व्यापार करेगी। कई नए क्षेत्र भी ऑनलाइन व्यापार के जरिए लोगों तक पहुँचने की कोशिश करेंगे।

यहाँ तक कि शहरों के बड़े-बड़े मॉल भी ऑनलाइन फ़ार्म का प्रयोग कर अपने व्यापार को बढ़ाने की कोशिश करेंगे।

कोरोना वायरस महामारी का असर देश के साथ ही पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। वैश्विक अर्थव्यवस्था 2020 में कोरोना वायरस महामारी के कारण 1 प्रतिशत तक कम हो सकती है। पहले इसके 2.5 प्रतिशत की वृद्धि का पूर्वानुमान किया गया था। संयुक्त राष्ट्र ने चेतावनी दी है कि यह आगे भी जा सकता है अगर आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिबंध इसी तरह लगा रहा।⁵

विश्व के देशों पर आर्थिक प्रभाव की गंभीरता काफी हद तक दो बातों पर निर्भर है। पहला लोगों की आवाजाही और प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक गतिविधियों पर प्रतिबंध की अवधि कितना रहता है। दूसरा संकट के लिए राजकोषीय सहायता कितना है और इसकी प्रति अर्थव्यवस्था की क्या प्रतिक्रिया रहती है। इन सब आंकड़ों के आस-पास ही अर्थव्यवस्था के परिणाम आने वाले समय में निर्भर करेगी। तत्काल और साहसिक नीति की ज़रूरत है। महामारी को रोकने और जीवन को बचाने के लिए फ़ैसले लेने होंगे। साथ

ही समाज को आर्थिक बर्बादी से बचाना और आर्थिक विकास और वित्तीय स्थिरता को बनाए रखना भी महत्वपूर्ण है। इस वैश्विक महामारी में जहाँ विश्व के सामने अपनी आर्थिक साख़ बनाए रखने की चुनौती है वहीं कुछ ऐसे भी राष्ट्र हैं जिनके बारे में अच्छी भविष्यवाणी आ रही है। विश्व अर्थव्यवस्था इस वर्ष मंदी में जाएगी जिससे अरबों-खरबों की वैश्विक आए में कमी होगी। पूरा विश्व आर्थिक मुश्किलों का सामना करेगा। विकासशील देशों के लिए भी गंभीर आर्थिक परेशानी उत्पन्न होगी। बड़ी बात यह है कि चीन के साथ भारत संभावित अपवाद हो सकता है।⁶

आर्थिक आधार पर जब इस महामारी का विश्लेषण करते हैं तो कुछ नए पहलू भी आकार लेता हुआ प्रतीत होता है। जिस व्यवस्था, जिस सोच को हम मरा हुआ मान कर दफ़ना चुके थे वह फिर से जीवंत होता लगता है।

विश्व स्तर पर पूंजीवाद के सामने समाजवाद आगे जाकर साम्यवाद लगभग गौण हो चुके थे। इस महामारी के परिणाम स्वरूप कुछ नए समीकरण आकार ले रही है। कई देशों में स्वास्थ्य सेवा तथा अन्य सेवाओं का राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है। कई देशों की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से नई सोच के अनुसार आकार ले रही हैं। सबसे कट्टरपंथी और प्रभावी प्रतिक्रियाएँ जो कोविड - 19 के प्रकोप से उभरी हैं, वे बाजारों के प्रभुत्व और विनिमय मूल्य को चुनौती देते हैं। दुनिया भर में सरकारें ऐसी कार्रवाई कर रही हैं जो तीन महीने पहले असंभव दिखती थीं। स्पेन में, निजी अस्पतालों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। ब्रिटेन में, परिवहन के विभिन्न साधनों के राष्ट्रीयकरण की बहुत अधिक संभावना है। फ़्रांस ने बड़े व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण करने की अपनी तत्परता दिखाई है।⁷ इन फैसलों के दूरगामी परिणाम आने वाले समय में देखने को मिल सकते हैं। जैसा कि

अर्थशास्त्री जेम्स मीडवे ने लिखा है, कोविड -19 की सही प्रतिक्रिया एक युद्धकालीन अर्थव्यवस्था नहीं है। जिसका मतलब बड़े पैमाने पर उत्पादन करना है। बल्कि, हमें 'एंटी-वॉरटाइम' अर्थव्यवस्था पर कम करना है। उत्पादन को बड़े पैमाने पर कम करने की आवश्यकता है। अगर हम भविष्य में महामारी के लिए अधिक लचीला होना चाहते हैं, साथ ही जलवायु परिवर्तन के सबसे बुरे प्रभाव से बचना चाहते हैं तो हमें एक ऐसे तरीके को विकसित करना होगा जिससे की उत्पादन को कम या ज्यादा किया जा सके और परिणामस्वरूप काम करने वालों के आजीविका को भी नुकसान न हो।⁸

घरेलू हिंसा

कोरोना वायरस के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से लगाया गया प्रतिबंध घरों में हिंसा को और अधिक गंभीर और अधिक खतरनाक बना रहे हैं। कोरोना वायरस के बाद एक और सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट को जोड़ा जा सकता है। यह घरेलू हिंसा है। आंकड़ों से पता चलता है कि बढ़ते घरेलू अत्याचार एक अवसरवादी संक्रमण की तरह फैल रहा है। यह महामारी द्वारा निर्मित स्थितियाँ में पनप रहा है। घरेलू हिंसा एक ऐसा विषय है जिस पर भारत जैसे देश में कम ही लोग खुलकर बोलते हैं। यँ तो घरेलू हिंसा का संबंध किसी लिंग विशेष से नहीं है अर्थात् घरेलू हिंसा के शिकार पुरुष व स्त्री दोनों में से कोई हो सकता है। फिर भी ज्यादातर मामलों में स्त्रियाँ ही घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं।

व्यापक अर्थों में घरेलू हिंसा में बच्चों, माता-पिता या बुजुर्गों के खिलाफ हिंसा शामिल है। यह शारीरिक, मौखिक, भावनात्मक, आर्थिक, धार्मिक और यौन शोषण सहित कई रूपों का हो सकता है। कोरोना वायरस के संक्रमण के डर से विश्व भर में लोग अपने घरों में बंद हैं। पुरुष

व स्त्री दोनों का नौकरियों पर या किसी और काम से बाहर जाना रुका है। 24 घंटे घरों में रहने के बाद व्यक्ति की धैर्य और संयम की अग्नि-परीक्षा हो जाती है। अगर कहें कि उसके अंदर की सच्चाई बाहर आ जाती है तो भी शायद गलत न हो। इस महामारी ने आम लोगों की स्वास्थ्य समस्याओं के साथ ही उनके जीवन को दाँव पर लगा दिया। कई ऐसे आंकड़े सामने आए हैं जो यह बताते हैं कि लॉकडाउन के द्वारा घरेलू हिंसा में बढ़ोतरी हुई है। अगर चाइना की बात करें तो यहाँ घरेलू हिंसा में तीन-चौथाई बढ़ोतरी हुई है। फ्रान्स में घरेलू हिंसा में 30 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी दर्ज की गई है।⁹ स्पेन में घरेलू हिंसा के लिए 'इमरजेंसी नंबर' को एक महीने पहले की समान अवधि की तुलना में लॉकडाउन के पहले दो हफ्तों में 18 प्रतिशत अधिक कॉल प्राप्त हुए।¹⁰

ऑस्ट्रेलिया के प्रधान मंत्री स्कॉट मॉरिसन ने लॉकडाउन की शुरुआत के बाद से घरेलू हिंसा से संबंधित विषय पर गूगल खोज में 75 प्रतिशत वृद्धि की बात बताई। ऑस्ट्रेलिया सरकार ने घरेलू हिंसा से निपटने के लिए 142 मिलियन डॉलर का फंड बढ़ाया है।¹¹ भारत में घरेलू हिंसा जैसे मामले मीडिया में और सार्वजनिक बहस में कम ही रहती हैं। ऐसा नहीं है कि भारत में यह समस्या नहीं है। भारत में 2015-2016 में किए गए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) में एक तिहाई महिलाओं ने कहाँ कि उन्होंने घरेलू हिंसा को झेला है, लेकिन उनमें से 1 प्रतिशत से भी कम ने पुलिस से मदद माँगी। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एस) के अध्ययन के अनुसार, 52 प्रतिशत महिलाओं और 42 प्रतिशत पुरुषों ने माना कि पति द्वारा पत्नी की पिटाई न्यायसंगत है। कोरोना वायरस संक्रमण के दौरान और विश्व

के अन्य देशों की तरह भारत में भी घरेलू हिंसा में बढ़ोतरी हुई है। भारत के राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडबल्यू) ने कहाँ कि उसने 23 मार्च से 16 अप्रैल के बीच 587 घरेलू हिंसा की शिकायतें दर्ज की हैं। यह आंकड़े पिछले 25 दिनों 27 फरवरी से 22 मार्च के बीच में प्राप्त हुई 396 शिकायतों की तुलना में महत्वपूर्ण वृद्धि है।¹²

संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियो गुटेरेस ने कहाँ कि कोरोना महामारी दुनिया भर में मानव पीड़ा और आर्थिक तबाही का कारण बनी है। हर जगह अब हिंसा खत्म हो। हिंसा युद्ध के मैदान तक ही सीमित नहीं है। कई महिलाओं और लड़कियों के लिए खतरा बढ़ा है। घरों में उन्हें सबसे ज्यादा सुरक्षित होना चाहिए। मैं आज इसलिए दुनिया भर के घरों में शांति के लिए अपील करता हूँ। पिछले हफ्तों के दौरान आर्थिक-सामाजिक दबाव और भय बढ़े हैं। हमने घरेलू हिंसा में एक भयानक वैश्विक उछाल देखा है। कुछ देशों में सहायता सेवाओं को कॉल करने वाली महिलाओं की संख्या दोगुनी हो गई है। कुछ घरेलू हिंसा आश्रय बंद हैं। दूसरे भरे हुए हैं। मैं सभी सरकारों से आग्रह करता हूँ कि वे महिलाओं के खिलाफ हिंसा को रोकने और निवारण के लिए योजना बनाये।¹³ संयुक्त राष्ट्र की तरफ से

है अगर किसी मुद्दे को उठाया जाता है तो वह उस विषय की गंभीरता को स्वतः स्थापित करता है। घरेलू हिंसा किसी एक देश की समस्या नहीं है इस समस्या का आकार भी वैश्विक स्तर पर है। अगर ब्रिटेन की बात करें तो यहाँ पर भी हालात बहुत अच्छे नहीं कहे जा सकते। घरेलू हिंसा के दोषी को हिंसा और घरेलू दुर्व्यवहार के दुष्परिणाम के बारे में गोपनीय सलाह प्रदान करने वाली संस्था रेस्पेक्ट के फोन लाइन को 30 मार्च से शुरू होने वाले सप्ताह में पहले सप्ताह की

तुलना में कॉल में 26.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी संस्था के वेबसाइट ने हिट में इस अवधि में 125 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की। चैरिटी संस्था 'रेस्पेक्ट' घरेलू दुर्व्यवहार के शिकार पुरुषों के लिए भी काम करती है। पुरुषों की सहायता के लिए हेल्पलाइन भी चलाया जाता है। हेल्प लाइन में सहायता के लिए कॉल करने वालों की संख्या में एक ही सप्ताह में 16.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि सलाह के लिए बनी वेबसाइट ने ट्रैफिक में 42 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की।¹⁴ जिस तरह से घरेलू हिंसा में बेतहाशा वृद्धि हुई है इस क्षेत्र के विशेषज्ञों का मानना है कि घर पर अलगाव की स्थिति में रहना मानो विकार और मानसिक दबाव को बढ़ाता है। एक तरह से यह प्रेशर कुकर इफेक्ट की तरह कार्य करता है जो दबाव होने पर बज उठता है। अपमानजनक व्यवहार और हिंसा में वृद्धि की एक वजह यह हो सकती है। अन्य वजहों को अगर तलाशे तो आर्थिक अनिश्चितता, नौकरियों के जाने का डर, सामाजिक अलगाव, खानपान की प्रवृत्तियों में बदलाव, सामाजिक संचार का अभाव, दिनचर्या में बदलाव, अत्याधिक नकारात्मक खबरों को देखना-पढ़ना, नशे से दूरी जैसे कुछ कारण हो सकते हैं।

पर्यावरण

जब-जब पर्यावरण की बात आती है तो जल- जंगल- ज़मीन के मुद्दे व्यावहारिक हो जाते हैं, पर इनके साथ हवा को भी जोड़ना जरूरी है। पर्यावरण को अगर विशुद्ध विज्ञान की भाषा में व्याख्यायित करें तो यह जैविक और अजैविक घटकों से मिलकर बना है। जैविक घटकों के तहत तमाम जीव-जंतु और पेड़-पौधे आ जाते हैं, गौरतलब है कि इसमें मनुष्य भी शामिल है। वही अजैविक घटक में हवा, पानी, मिट्टी, सूखे पत्ते, मृत जीव-जंतु, तापमान, दबाव, आर्द्रता, आदि आते हैं। कोरोना वायरस संक्रमण बड़ा घटनाक्रम

है। शायद ही कोई क्षेत्र इस महामारी से अछूता रह गया हो।

बड़े-बड़े कल-कारखाने बंद पड़े हुए हैं। इनसे निकलने वाले कचरे और धुआँ बंद हैं। सड़कों से यातायात गायब है।

रेल-हवाई यातायात सब बंद पड़े हैं। समुद्र में चलने वाले बड़े-बड़े पोत किनारों पर खड़े हैं। देशों ने अपनी सीमाएं बंद की हुई हैं। लोग घरों में अनजान खतरे के डर से बंद है। पर्यावरण की दृष्टिकोण से अगर इन हालातों की समीक्षा की जाए तो इसके मिले-जुले परिणाम देखने को मिलेंगे। निर्भर करता है कि आपका नजरिया क्या है। मनुष्य भी पर्यावरण का जैविक हिस्सा है, इस महामारी के कारण सबसे ज्यादा हताहत मनुष्य ही हुआ है तो इस नजरिए से पर्यावरण को गहरी क्षति पहुँची है। लंबे समय तक इसकी छाप रहेगी। दूसरी तरफ अगर हम पर्यावरण के अजैविक तत्वों की बात करें तो कल कारखाने बंद होने से, सड़कों से यातायात गायब होने से, हवा में मिलने वाले धुएँ और धूल की मात्रा कम हुई है। परिणामस्वरूप हवा की गुणवत्ता खास कर महानगरों में व्यापक सुधरा है। दूसरी तरफ कल-कारखाने और व्यापारिक जगहों से मिट्टी और जल में मिलने वाली ठोस और तरल कचरे रुके हैं। अतः मिट्टी और जल में सुधार लाजमी है। उद्योग, परिवहन नेटवर्क और व्यवसाय बंद हो गए हैं, इसने कार्बन उत्सर्जन में अचानक गिरावट ला दी है। इस साल पिछली साल के इस समय की तुलना में, न्यूयॉर्क में प्रदूषण का स्तर लगभग 50 प्रतिशत कम हो गया है।¹⁵ चीन में, वर्ष की शुरुआत में उत्सर्जन 25 प्रतिशत गिर गया, क्योंकि लोगों को घर पर रहने का निर्देश दिया गया था। कारखाने बंद हो गए और कोयले का उपयोग 2019 की अंतिम तिमाही के बाद से चीन के छह सबसे बड़े बिजली संयंत्रों में 40

प्रतिशत तक गिर गया। पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार अच्छी हवा, पारिस्थितिकी चीन के 337 शहरों में पिछले साल के समान समय की तुलना में 11.4 प्रतिशत ऊपर थी। यूरोप में, उपग्रह चित्र उत्तरी इटली में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO₂) उत्सर्जन को दूर दिखाते हैं। 'इसी तरह की कहानी स्पेन और ब्रिटेन में भी है।'¹⁶ नासा के अनुसार जनवरी और फरवरी में, पूर्वी और मध्य चीन में NO₂ की मात्रा इस समय अवधि के लिए मान्य मात्रा से काफी कम (10 से 30 प्रतिशत कम) था।¹⁷ उत्सर्जन के नीचे जाने के अलग-अलग कारण विशेषज्ञ गिनाते हैं।

उदाहरण के लिए वैश्विक कार्बन उत्सर्जन का 23 प्रतिशत परिवहन से होता है। ये उत्सर्जन उन देशों में थोड़े समय के लिए कम हुए हैं जहाँ लोगों को अपने घरों में रहना अनिवार्य है तथा अनावश्यक यात्रा मना है। इन सबके बीच जो सवाल मौजूद बन जाता है वह यह है कि क्या यह स्थिति हमेशा बनी रहेगी? सब कुछ सामान्य होने के बाद पर्यावरण सामान्य रह जाएगा? जाहिर सी बात है एक बार फिर से जब कल-कारखाने काम करना शुरू करेंगे, सड़कों पर यातायात वापस बहाल होंगे, रेल और हवाई यात्रा फिर से शुरू होगी तो हालात फिर से नई परिस्थितियों के अनुसार आकार लेंगे। विशेषज्ञों का कहना है कि हालांकि वायु प्रदूषण में कमी आई है, पर यह प्रभाव अस्थायी है। वायरल सोशल मीडिया पोस्ट तथ्यों को गलत तरीके से पेश कर रहे हैं। वहीं अगर इस लॉकडाउन के दौरान भी देखें तो कई सारे ऐसे कदम उठाए गए हैं जो पर्यावरण के दृष्टिकोण से कदापि हितकारी नहीं है। यू.एस. में कुछ शहरों ने रीसाइक्लिंग कार्यक्रमों को रोक दिया है क्योंकि अधिकारियों को रीसाइक्लिंग केंद्रों में वायरस फैलने के जोखिम के बारे में चिंता है। इटली ने संक्रमित निवासियों के कचरे

निपटारन पर प्रतिबंध लगा दिया है। वैसे उद्योग-धंधे तथा दुकानदार जो अपने उपभोक्ताओं को स्वयं का थैला लाने के लिए कहते थे उन्होंने भी एक बार में प्रयोग लाए जाने वाले प्लास्टिक थैले का फिर से प्रयोग यह कह कर शुरू कर दिया है कि इससे संक्रमण के कम खतरे हैं। जबकि विशेषज्ञों का कहना है कि एक बार में प्रयोग में लाए जाने वाले प्लास्टिक के थैलों से भी संक्रमण का खतरा उतना ही है। उदाहरण के तौर पर अंतरराष्ट्रीय ब्रांड स्टारबक्स को ही ले तो इस ब्रांड ने पुनः प्रयोग में आने वाले कप पर अस्थाई तौर पर प्रतिबंध लगा दिया है। वहीं अगर पड़ोसी चीन का उदाहरण लें तो लॉकडाउन के दौरान लोग घरों से ऑनलाइन शॉपिंग के द्वारा काफी सामानों के खरीदारी की। साथ ही खाने-पीने के वस्तुओं की भी ऑनलाइन खरीदारी की। इन ऑनलाइन सामग्रियों के साथ पैकेजिंग के तौर पर काफी मात्रा में पर्यावरण को हानि करने वाले सामान भी लोगों के घर पहुँचा। जो बाद में कचरे के रूप में पर्यावरण को गंदा करेगा। इस लॉकडाउन के दौरान हॉस्पिटल से निकलने वाले मेडिकल कचरे में भी काफी वृद्धि देखी गई। चाइना के वुहान को ही अगर उदाहरण के तौर पर ले तो वहाँ से 200 टन कचरा प्रतिदिन निकला। पहले इसकी मात्रा 50 टन होती थी। दिल्ली में आम दिन में, वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) का स्तर आमतौर पर 200 (25 से ऊपर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा असुरक्षित माना जाता है) होता है जो गंभीर बात है। पिछले साल वायु गुणवत्ता सूचकांक 900 के ऊपर चला गया था जो कि प्रदूषण की पराकाष्ठा है। अभी दिल्ली की 11 मिलियन पंजीकृत कारों को सड़कों पर चलने से रोक दिया गया और कारखाने तथा निर्माण कार्य रोक दिए गए। परिणाम स्वरूप एक्यूआई का स्तर नियमित रूप से 20 से नीचे

गिर गया है। आसमान साफ नीला है। यह एक दुर्लभ बात है। यहाँ तक कि पक्षी की आवाज भी जानदार सुनाई देती है। एक राजनेता और लेखक डॉ शशि थरूर, जो पर्यावरण के मुद्दों पर मुखर रहे हैं ने कहाँ कि उन्हें उम्मीद है कि यह एक वेक-अप कॉल होगा। थरूर ने कहाँ, नीले आकाश की आनंदमयी दृष्टि और स्वच्छ हवा में साँस लेने की खुशी हमें यह बताते हैं कि बाकी समय हम क्या खो रहे हैं। दिल्ली का एक्यूआई लगभग 30 है और बारिश के एक घंटे के बाद दोपहर में यह 7 तक गिर गया। यह बड़ी बात है।¹⁸ सिर्फ दिल्ली ही नहीं है जो वर्षों में सबसे साफ आसमान का अनुभव कर रही है। इस सप्ताह तीन दशकों में प्रदूषण अपने न्यूनतम स्तर तक गिर गया। पंजाब के जालंधर के निवासियों को अविश्वसनीय दृश्य ने चौका दिया।

जब उनको हिमाचल प्रदेश के धौलाधार पर्वत श्रृंखला का दर्शन हुआ। 120 मील की दूरी पर स्थित चोटियों को लगभग 30 वर्षों तक पंजाब के लोगों ने नहीं देखा था। लॉकडाउन के दौरान घटने वाले प्रदूषण की मात्रा ने एक नई बहस को जन्म दिया। एक तरह से देखा जाए तो इस दौरान कई ऐसे डाटा सामने आए हैं जो कि आम लोगों के साथ ही सरकारों की आँखें खोलने वाली है। भारत की शक्तिशाली कार लॉबी ने लंबे समय तक इस बात का खंडन किया है कि कारें दिल्ली के प्रदूषण की एक प्रमुख कारण हैं। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट की निदेशक सुनीता नारायण ने कहाँ कि "लॉकडाउन के परिणामस्वरूप प्रदूषण में तेजी से गिरावट हमेशा के लिए बता दिया है कि वाहन कैसे शहरों में प्रदूषण की वजह हैं। बहरहाल हर शहर की पर्यावरण से जुड़ी अपनी तस्वीर है और तस्वीर से जुड़े तथ्य है। जो बड़ी बात निकलकर सामने आई है वह यह है कि अब लोगों के पास साफ आसमान

और स्वच्छ हवा की समझ पहुँच चुकी है। देखना होगा यह समझ भविष्य में क्या आकार लेती है। बीजिंग में ग्रीनपीस के वरिष्ठ वैश्विक नीति सलाहकार ली शुओ ने कहाँ कि जो लोग कोविड-19 संकट के दौरान पर्यावरण सुधार का जश्न मना रहे हैं, उन्हें आगे जाकर नए सचाई से रूबरू होना पड़ेगा। प्रदूषण अस्थायी रूप से कम हो सकता है, लेकिन यह शायद ही हमारे पर्यावरण की सफाई का एक स्थायी तरीका है। इस बीच, वायरस संकट अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के लिए जिम्मेदार है जो लंबे समय तक रह सकते हैं और इससे निपटना कठिन चुनौती है।²⁰

निष्कर्ष

इसमें कोई दो राय नहीं है कि आने वाला वक्त वर्तमान और भूत से बिल्कुल अलग होगा। सामाजिक परिवर्तन के साथ ही सरकारों के स्तर पर भी सोचने और कार्य करने के तरीके बदलेंगे। मुश्किल हालात में व्यक्ति, समाज और सरकार अपनी कमजोरियों से रूबरू होता है। अपनी क्षमताओं का सही-सही आकलन कर पाता है। अपनी सीमाओं की सही जानकारी होती है। रिश्तों में कड़वाहट या गर्माहट, व्यवस्था की सफलता या असफलता, सरकार की मजबूती या लाचारी हर संस्थान की बारीक से बारीक पहलू को वृहद के साथ बहुपक्षीय दृष्टिकोण इस महामारी के दौरान सामने आए है। इस महामारी ने पूरी व्यवस्था की सच्चाई सामने लाकर रख दी है। जो देश खुद को महाशक्ति के तौर पर पेश करते थे, आज बाप-बाप कर रहे हैं। आर्थिक साख का दंभ भरने वाले देश सामाजिक और स्वास्थ्य प्रबंध के मोर्चे पर फिसड्डी निकले। बड़े-बड़े भविष्य वक्ता और स्वयंभू रणनीतिकार इस महामारी के आकलन और प्रबंधन में सिफर साबित हुए। विकास के जिस मॉडल पर वर्तमान समय को गर्व था वह भगोड़ा साबित हुआ। बेड के

अभाव में मरीज जमीन पर मरते रहे और निजी अस्पतालों में बेड खाली पड़े रहे। विकास के इस खालीपन को कई देशों ने समझा और बदलाव की ओर मुड़े यह सकारात्मक पहल है। इस महामारी ने हर क्षेत्र को काफी मात्रा में आँकड़े उपलब्ध कराया है जो भविष्य में विश्लेषित होकर कई क्रांतिकारी बदलाव लाएगी, इसमें कोई शक नहीं है।

- 1) The Economist.(2020, April 3). Covid-19: how bad will it be for the economy? | The Economist [Video file]. retrieve from <https://www.youtube.com/watch?v=wUWwN4LKuE&t=182s>
- 2) ibid.
- 3) CNBC.(2020, April 9). Why The Coronavirus Recession Is Unlike Any Other[Video file]. Retrieve from <https://www.youtube.com/watch?v=Fq3KMoidtLk>
- 4) `Time.(2020, March 19). Coronavirus : How The COVID-19 Pandemic Will Impact The Global Economy | TIME[Video File]. Retrieve form <https://www.youtube.com/watch?v=lgYOzCThlzc>
- 5) Global economy could shrink by almost 1% in 2020 due to COVID-19 pandemic: United Nations.(2020, April 2).Global economy could shrink by almost 1% in 2020 due to COVID-19 pandemic: United Nations. Retrieved from <https://economictimes.indiatimes.com/news/international/business/global-economy-could-shrink-by-almost-1-in-2020-due-to-covid-19-pandemic-united-nations/articleshow/74943235.cms>
- 6) Covid-19 Impact: World Economy To Go Into Recession, Except India And China, UN Says.(31 March 2020). Covid-19 Impact: World Economy To Go Into Recession, Except India And China, UN Says. Retrieve from <https://www.bloombergquint.com/business/covid-19-impact-world-economy-to-go-into-recession-except-india-and-china-un-says>
- 7) Mair Simon.(2020 March 31). Could the huge shifts in our way of life being introduced as

- part of the fight against Covid-19 pave the way for a more humane economy?. Retrieve from <https://www.bbc.com/future/article/20200331-covid-19-how-will-the-coronavirus-change-the-world>
- 8) ibid
- 9) global News.(2020, April15). Coronavirus outbreak: Are domestic violence numbers rising during COVID-19 lockdown?[Video file]. Retrieve from <https://www.youtube.com/watch?v=HRzA9dX7fek>
- 10) Taub Amanda*(2020 April14).A New Covid-19 Crisis: Domestic Abuse Rises Worldwide. Retrieved from <https://www.nytimes.com/2020/04/06/world/coronavirus-domestic-violence.html>
- 11) Merlo Francesca.(2020, April1) Global rise in domestic violence cases since coronavirus lockdown. Retrieved from <https://www.vaticannews.va/en/world/news/2020-04/increase-in-number-of-domestic-violence-cases-since-lockdown.html>
- 12) S Rukmini.(2020,April18).Locked down with abusers: India sees surge in domestic violence. Retrieved from <https://www.aljazeera.com/news/2020/04/locked-abusers-india-domestic-violence-surge-200415092014621.html>
- 13) new china TV.(2020 April 6).UN chief warns against rise in domestic violence amid coronavirus lockdowns.[Video File]. Retrieve from <https://www.youtube.com/watch?v=ENX-JSx-CNk>
- 14) Grierson Jamie.(2020,April9).UK domestic abuse helplines report surge in calls during lockdown. Retrieved from <https://www.theguardian.com/society/2020/apr/09/uk-domestic-abuse-helplines-report-surge-in-calls-during-lockdown>
- 15) Henriques Martha.(2020 March27).Will Covid-19 have a lasting impact on the environment?.Retrieved from <https://www.bbc.com/future/article/20200326-covid-19-the-impact-of-coronavirus-on-the-environment>
- 16) ibid
- 17) Link Devon.(2020 March 25).Fact check: COVID-19 crisis has not created decreased long-term human environmental impact. Retrieved from <https://www.usatoday.com/story/news/factcheck/2020/03/25/fact-check-coronavirus-crisis-benefiting-environment/2908300001/>
- 18) PetersenHannah Ellis.(2020April11).It's positively alpine! Disbelief in big cities as air pollution falls. Retrieved from <https://www.theguardian.com/environment/2020/apr/11/positively-alpine-disbelief-air-pollution-falls-lockdown-coronavirus>
- 19) ibid
- 20) News Bloomberg. (2020,March30). The Unexpected Environmental Consequences of Covid-19. Retrieved from <https://www.bloomberg.com/news/articles/2020-03-30/the-unexpected-environmental-consequences-of-covid-19>

देवेश पाण्डेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली स्कूल आफ जर्नलिज्म, दिल्ली विश्वविद्यालय,, नई दिल्ली, मेल- pandeydewesh@gmail.com, संपर्क- 9452520506

डॉ. अजय कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, Consultant Media Research, SJMC, Aryabhata Knowledge University, Patna (Bihar), मेल-ajaybhu2010@gmail.com, संपर्क- 9608010072, 8210045452

सोनिया बत्रा, असिस्टेंट प्रोफेसर, टेकनिया इंस्टीट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडीज, नई दिल्ली, मेल-soniabatra49@yahoo.in, संपर्क- 9717180250

प्रतिक्रियाएँ (व्यंग्य-विशेषांक)

सरसरी निगाह से अंक देखा है। तुमने कमाल कर दिया है। सार्थक व्यंग्य एवं व्यंग्य की गंभीरता के प्रति तुम्हारा समर्पण साक्षात् हुआ है। यह अंक इसलिए भी मुझे अच्छा लगा, क्योंकि यह बहुत कुछ मेरी 'व्यंग्य-यात्रा' की सोच से मेल खाता है।

-डॉ. प्रेम जनमेजय

संपादक : व्यंग्य-यात्रा
नई दिल्ली

डॉ. पंकज साहा के अतिथि संपादन में पश्चिम बंगाल से प्रकाशित पत्रिका 'मुक्तांचल' का व्यंग्य विशेषांक आए है। देश के दिग्गज व्यंग्यकारों के साथ युवा व्यंग्यकार भी इसमें हैं। व्यंग्य के विविध पक्षों पर गंभीर विमर्श है। डॉ. साहा की लगन और परिश्रम से यह व्यंग्य विशेषांक संग्रहणीय बना है। उन्हें और 'मुक्तांचल' परिवार को आत्मिक बधाई!

- बुलाकी शर्मा

वरिष्ठ व्यंग्यकार
बीकानेर (राजस्थान)

'मुक्तांचल' का व्यंग्य-विशेषांक अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा के सौजन्य से प्राप्त हुआ। संपादकीय में डॉ. साहा ने व्यंग्य को पारिभाषित करते हुए संबंधित इतिहास के गवाक्ष को खटखटाया है। साथ ही, इसमें वर्तमान और भविष्य की चिंता की अकुलाहट भी है। निःसंदेह दमदार संपादकीय के लिए वे बधाई के हकदार हैं।

'अवस्थिति' के अंतर्गत संपादकीय, विमर्श, मूल्यांकन, व्यंग्य कल: गद्य, व्यंग्य कल: पद्य, व्यंग्य आज : गद्य और पद्य, साक्षात्कार तथा पुस्तकायन स्तंभों के माध्यम से व्यंग्य को समग्रता में एक चोटी-सी जगह पर सहजता से समेट लेना संपादकीय दूर-दृष्टि का ही परिचायक है। विमर्श में सुभाषचंद्र गुप्त ने व्यंग्य की विकास-यात्रा पर गहरी पड़ताल की है। ख्यातिलब्ध व्यंग्यकारों का मूल्यांकन इस अंक की अमूल्य संपदा है।

व्यंग्य कल : गद्य और पद्य के अंतर्गत संपादक ने व्यंग्य की शैली, शिल्प तथा नुकीले कथ्यों को परंपरा से जोड़कर अभिनव स्थापन का महत्वपूर्ण-कार्य किया है। इस कड़ी में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, लक्ष्मीचंद्र जैन, के.पी. सक्सेना, नागार्जुन, धूमिल, हरिओम बेचैन तथा दिनकर सोनवलकर हमारा ध्यान पूरी तरह आकर्षित करते हैं। इससे नई पीढ़ी एक सहज मार्ग प्राप्त कर सकेगी।

उसी प्रकार व्यंग्य आज : गद्य और पद्य में संग्रहीत व्यंग्य अपने समय-समाज की सम्यक पड़ताल करने में समर्थ है। नरेंद्र कोहली, शंकर पुणतांबेकर, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, अनूप श्रीवास्तव, सुरेशकांत, धर्मपाल महेन्द्र जैन, बुकाली शर्मा, वीरेन्द्र परमार, रमेश मनोहर, अशोक चक्रधर तथा रामावतार राही जैसे नाम व्यंग्य के राजमार्ग पर माइल-स्टोन की तरह दिशा-निर्देश करते नजर आते हैं। अन्य नाम

भी रेखांकनीय हैं।

‘साक्षात्कार’ और ‘पुस्तकायन’ स्तंभ भी महत्वपूर्ण बन पड़ा है। पत्रिका के बीच सूक्तियों का समावेश मन में ताजगी भरने का अद्भुत कार्य संपन्न करता है।

किं बहना ! विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि ‘मुक्तांचल’ का यह व्यंग्य-विशेषांक अपने लक्ष्य को साधने में पूरी तरह सफल हुआ है। संपादक एवं अतिथि संपादक को मेरी अशेष शुभकामनाएँ एवं बधाई।

- **मॉगन मिश्र ‘मार्तंड’**
प्रधान संपादक, ‘संवदिया’
फारबिसगंज (बिहार)

हावड़ा, पश्चिम बंगाल से प्रकाशित होने वाली पत्रिका ‘मुक्तांचल’ का यशस्वी व्यंग्य-विशेषांक (अंक 30-31), अप्रैल-सितंबर, 2021) प्राप्त हुआ। इस संग्रह में सभी पीढ़ियों के व्यंग्यकारों की रचनाएँ संतुलित रूप से सम्मिलित की गई है। इसलिए रचनाओं को पढ़ते हुए पाठक को व्यंग्य के क्रमिक विकास के बारे में भी पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

यूँ तो आजकल विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य-विशेषांकों की होड़ सी लगी हुई है, पर ज्यादातर पत्रिकाओं के व्यंग्य-विशेषांकों में तथाकथित संपादक या अतिथि संपादक प्रकाशन के लिए प्राप्त रचनाओं को पढ़ना तक गवारा नहीं करते हैं। संपादन तो दूर की बात है। इस लिहाज से ‘मुक्तांचल’ का व्यंग्य-विशेषांक बहुत विशिष्ट है, क्योंकि इसके संयोजन में इस अंक के अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा जी का परिश्रम स्पष्ट झलकता है।

यह अंक इस मामले में भी विशिष्ट कहा जा सकता है, क्योंकि इस अंक में व्यंग्य पर विमर्श आलेख और ग्रेट-मास्टर्स के रचनात्मक योगदान पर भी गवेषणात्मक आलेख सम्मिलित किए गए हैं। इस तरह यह विशेषांक शोधार्थियों के लिए भी बहुत उपयोगी बन पड़ा है। कुल मिलाकर प्रस्तुत व्यंग्य-

विशेषांक अपने आप में पूर्ण है, और व्यंग्य-साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत उपयोगी है।

अंक के अतिथि संपादक और समस्त संपादकीय टीम को बहुत-बहुत साधुवाद। शुभकामनाओं सहित।

- **श्रवण कुमार उर्मलिया**

वरिष्ठ व्यंग्यकार, गाजियाबाद (उ.प्र.)

‘मुक्तांचल’ का व्यंग्य-विशेषांक : व्यंग्य के भूत, वर्तमान और भविष्य का पुष्पाहार है। आज के छलिया समय और पाखंडी वातावरण में जब चरणदासी संप्रदाय के पुरुष पुंगव ही सर्वत्र सफलता के सोपान स्पर्श कर रहे हों, सत्ता के शीर्ष पर असामाजिक-असांस्कृतिक लोगों का वर्चस्व स्थापित हो जाए, समाज का प्रत्येक कोना सड़ांध और बदबू से बजबजाने लगे, तब व्यंग्य ही अभिव्यक्ति का सबसे उपयुक्त माध्यम सिद्ध होता है। जिस समाज के आदर्श एक-एक कर धराशायी हो रहे हों, नैतिकता केवल भाषणों तक सिमट जाए, समाज को दिशा देने वाले ही दिशाहीन हो जाएँ, घृणित कर्म करनेवाला व्यक्ति प्रणम्य हो जाए, अपराधियों के चरण-स्पर्श कर लोग गौरवान्वित महसूस करने लगें, तब व्यंग्यकार इन विद्रूपताओं पर शब्दों की छेनी चलाकर समाज को दिशा देने का प्रयास करता है। ‘मुक्तांचल’ के अप्रैल-सितंबर, 2021 अंक में प्रकाशित व्यंग्य ऐसी ही विद्रूपताओं पर प्रहार करते हैं। प्रस्तुत अंक व्यंग्य-विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। प्राख्यात साहित्यकार और व्यंग्य-विद्या के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. पंकज साहा ने अपने नीर-क्षीर विवेक का परिचय देते हुए इस अंक का संपादन किया है। अतिथि संपादक ने इस अंक में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों पीढ़ियों के व्यंग्यकारों की रचनाओं को सम्मिलित किया है। पत्रिका की संपादक डॉ. मीरा सिन्हा ने अपनी संस्तुति में रेखांकित किया है कि साहित्य का कार्य साहित्य को दिशा देना है। प्रेमचंद ने भी साहित्य को सर्वलाइट की संज्ञा दी थी। व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर मीठा प्रहार किया जाता है, ताकि सकारात्मकता के पुष्प-पराग

का प्रसार हो। अतिथि संपादक ने अपने वैदुष्यपूर्ण संपादकीय में हिंदी व्यंग्य-साहित्य का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया है। उन्होंने व्यंग्य की गुणवत्ता में गिरावट पर चिंता व्यक्त की है। 'विमर्श' और मूल्यांकन स्तंभों के अंतर्गत व्यंग्य विधा और प्रमुख व्यंग्यकारों के साहित्यिक अवदान का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। इस अंक में प्रकाशित व्यंग्य रचनाएँ हर प्रकार की विसंगतियों व विद्रूपताओं पर प्रहार करती हैं। अंक में प्रकाशित आलेख व रचनाएँ पाठकों की ज्ञान-पिपासा का शमन करने में समर्थ हैं। 'मुक्तांचल' का प्रस्तुत अंक संपादक की सूक्ष्म विश्लेषण क्षमता और वैदुष्यपूर्ण अनुसंधानपरक दृष्टि का साक्ष्य है। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना और इस सारस्वत अनुष्ठान के लिए साधुवाद।

-डॉ. वीरेन्द्र परमार

वरिष्ठ व्यंग्यकार, फरीदाबाद (उ.प्र.)

सबसे पहले संपादक डॉ. मीरा सिन्हा, अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा को सादर धन्यवाद, मेरे आलेख को शामिल करने के लिए...। प्रबुद्ध लेखनी का इतना सुंदर गुच्छ है कि जब मैंने इसे पढ़ना शुरू किया तो आँखें नहीं हट रही हैं...। ऑनलाइन पढ़ने में थोड़ी तकलीफ होती है, लेकिन सामग्री इतनी कालजयी है कि बस अभी तक पढ़ ही रही हूँ...। आप सभी का अनुभव और अनथक प्रयास ही झलक पड़ रहा है।

- डॉ. प्रतिमा प्रसाद

प्राध्यापिका, काजी नजरूल
विश्वविद्यालय, आसनसोल
(प.बं.)

विद्यार्थी मंच द्वारा 'मुक्तांचल' त्रैमासिक पत्रिका के 'व्यंग्य कल और आज' विशेषांक के लोकार्पण और विद्यार्थी मंच स्थापना दिवस के अवसर पर विचार गोष्ठी, काव्य पाठ एवं कथा संवाद का आयोजन कर प्रकाशन पर्व मनाया गया। कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए 'मुक्तांचल' पत्रिका की संपादक डॉ. मीरा सिन्हा ने कहा कि "हमें पढ़ने से जुड़ना और जोड़ना होगा, पढ़ने की संस्कृति समाप्त हो रही है, सोशल मीडिया के भ्रम जाल में फँसी हमारी नई पीढ़ी भटक रही है, उसे सही दिशा तभी दे सकते हैं, जब हम उन्हें पढ़ने से जोड़ पाते हैं।" वहीं 'मुक्तांचल' पत्रिका के अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा ने 'व्यंग्य' को निबंध का निकष कहा, और व्यंग्य के विकास में कबीरदास, भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद और हरिशंकर परसाई के योगदान पर विस्तृत वक्तव्य रखा। साथ ही 'व्यंग्य कल और आज' विशेषांक पर कहते हैं कि "इस व्यंग्य को निकालने का उद्देश्य यही था कि नवोदित विद्यार्थी व्यंग्य को सही अर्थ में समझें। कल के लेखन में व्यंग्य होता था, आज व्यंग्य का लेखन हो रहा है।" खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज से डॉ. शम्भा उपाध्याय व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहती हैं कि "व्यंग्य एक प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य करती है, व्यंग्यकार बिना किसी तोड़-फोड़ के अपनी चिकित्सा कर देता है।" साथ ही इस अंक के महत्व के संदर्भ में कहती हैं कि "शोध के समीक्षण संस्कार में व्यंग्य साहित्य के लिए यह पत्रिका एक इंडेक्स है। यदि कोई व्यंग्य साहित्य को पढ़ना चाहता हो, उसपर शोध करना चाहता हो तो दिशा निर्देशन करना होता है, तो उसका प्राथमिक कार्य इस पत्रिका ने कर दिया है।" खिदिरपुर कॉलेज की डॉ. इतु सिंह कहती हैं कि "कौन ऐसा व्यक्ति है जो व्यंग्य नहीं करता। सबसे ज्यादा व्यंग्य तो महिलाओं की बातों में होती है, जिसको कोई चुटकी, ताना कह देता है, लेकिन जब वह साहित्य तक पहुँचता है तो वह अपने आकार को इतना विस्तृत कर देता है कि वह पूरे राजनीति और समाज से लेकर प्रशासन तक को हिला कर रख देता है, इसलिए कई व्यंग्य रचनाकारों को मार भी पड़ी है। परसाई खुद ही पीटें हैं और उस पीटने पर भी उन्होंने लिख दिया। आज के समय में कबीर बनना संभव नहीं, जबकि आज जनतंत्र है, राजसत्ता नहीं है। इसलिए व्यंग्य का जो सशक्त लेखक होगा, वह व्यंग्य के भीतर से ही रास्ता निकालेगा, जिससे सामने वालों तक बात भी पहुँच जाए और जिसको चोट करनी हो उसे चोट भी लगे और पता भी न चलें। इस पर काम करने की जरूरत है कि मीरा में, महादेवी में कहाँ-कहाँ व्यंग्य है। हमारे यहाँ व्यंग्य लेखिकाएँ कम क्यों हैं?" वहीं काजी नजरूल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर निशांत ने स्वरचित कविता 'भाषा एक हथियार है' का पाठ किया। साथ ही पत्रिका निकालने के संदर्भ में आर्थिक स्थिति पर अपना विचार रखा। खड़गपुर कॉलेज के डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल 'व्यंग्य कल और आज' विशेषांक के महत्व के संदर्भ में कहते हैं कि "यह अंक रोचक, आकर्षक, पठनीय तो है ही, साथ ही साथ हिंदी साहित्य की अतुल धरोहर के रूप में संग्रहणीय भी है। विनय कुमार मिश्र ने 'वीसलदेव रासो' की नायिका राजमती से लेकर सूरदास की 'भ्रमरगीत' की गोपियों जो तर्क करती हैं, उसे व्यंग्य की बहार कहाँ।

इसी बीच कार्यक्रम में जीवन सिंह ने स्वरचित भोजपुरी कविता के गायन से दर्शकों को मोह लिया और अभिषेक पांडेय ने अपनी स्वरचित कविता के माध्यम से समसामयिक समय पर व्यंग्य कसा। कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए कालिका प्रसाद उपाध्याय, विवेक लाल, प्रियंका सिंह, प्रभा उपाध्याय, राधा कुमारी ठाकुर ने काव्य पाठ किया तथा पार्वती रघुनंदन ने हरिशंकर परसाई की व्यंग्य कहानी 'उखड़े खंभे' का एकल पाठ किया। विशिष्ट अतिथि के रूप में पश्चिम बंगाल हिंदी अकादमी के सदस्य मानव जायसवाल, प्रभाष मिश्रा और अरविंद मिश्रा कार्यक्रम में उपस्थित रहे। मानव जायसवाल ने अपने स्वरचित कविता का पाठ किया। कार्यक्रम का सफल संचालन विनीता लाल ने किया। कार्यक्रम में पश्चिम बंगाल के महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के छात्रों ने सहभागिता की। कार्यक्रम को सफल बनाने में सुशील पाण्डेय और परमजीत की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

पार्वती रघुनंदन

हिंदी मेला मधु सिंह

कोलकाता में 27 वर्षों से आयोजित होने वाला हिंदी मेला युवा कलाकारों और रचनाकारों के बौद्धिक विकास का मंच है। इस मेले में स्वाधीनता के 75वें साल का पालन मानवता के उत्सव के रूप में किया गया। उद्घाटन करते हुए वरिष्ठ लेखक विजय बहादुर सिंह ने कहा “हिंदी मेला समाज में घृणा की जगह प्रेम तथा भेदभाव की जगह समानता का प्रसार कर रहा है।”

मेले के पहले दिन कोरोना काल में दिवंगत लेखकों और कलाकारों के प्रति डॉ. शुभ्रा उपाध्याय ने श्रद्धांजलि अर्पित की। साथ ही शिक्षाविद प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय को प्रो. कल्याणमल लोढ़ा शिक्षक सम्मान प्रदान किया गया। लोढ़ा जी की सुपुत्री सुषमा सिंघवी ने कहा कि हिंदी की वीणा में मेरा भी स्वर शामिल है। विश्वंभर नेवर ने कहा कि 27 वर्षों से जारी यह मेला इससे जुड़े संस्कृति कर्मियों की भावात्मक मजबूती का उदाहरण है।

हिंदी मेला के दूसरे दिन 27 दिसंबर, 21 काव्य आवृत्ति प्रतियोगिता का अयोजन ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों पटल पर हुआ। इसमें राज्य समेत देश के अलग-अलग संस्थानों से करीब 430 विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया।

हिंदी मेला के छठवें दिन ‘स्वतंत्रता के 75 साल: साहित्य, संस्कृति और मीडिया’ विषय पर अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर चर्चित इतिहासकार हितेंद्र पटेल ने कहा कि “भय के बीच रहकर स्वतंत्रता का स्वप्न नहीं देखा जा सकता। जरूरत है कि हम साहस के साथ वह सब भी कहें जो हम बोल नहीं पा रहे हैं।” सुप्रसिद्ध कवि प्रियंकर पालीवाल ने कहा कि “लोकतंत्र का अर्थ इसमें निहित है कि हम उसका उपयोग कैसे कर रहे हैं। गांधी के लिए अपशब्दों का प्रयोग करना स्वतंत्रता की बड़ी विडंबना है।” अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ आलोचक शंभुनाथ ने कहा कि “भय वहीं प्रबल होता है जहाँ महान स्वप्नों की कमी हो। सौ वर्षों के स्वाधीनता संग्राम में शहीदों ने जिन आद्रशों और स्वप्नों के लिए अपना बलिदान किया उन्हें पूरा करना बाकी है।” इस अवसर पर शुभ्रा उपाध्याय की पुस्तक समानांतर चलती एक लड़की एवं मधु सिंह की पुस्तक हिंदी साहित्य और सिनेमा एक अंतर्गता का लोकार्पण किया गया। दोनों सत्रों का संचालन डॉ. गीता दूबे और डॉ. गुलनाज बेगम ने किया। इसमें स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी और नौजवान अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं। उन्होंने डॉ. कुसुम खेमानी, अजय व्यास, नरेश कुमार, अमल दास सहित तमाम संस्कृतिकर्मियों का अभिनंदन करते हुए सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। अजय व्यास ने कहा कि “हिंदी मेला एक सांस्कृतिक आंदोलन की तरह है। यह अच्छी बात है कि सभागार में आयोजन के साथ-साथ इसका ऑनलाइन में भी विस्तार हुआ है। समापन समारोह में युवा पत्रकार श्री अनवर हुसैन को युगल किशोर पत्रकारिता सम्मान प्रदान किया गया। डॉ. राजेश मिश्र ने मानपत्र का वाचन किया। इस अवसर पर लगभग 200 विजयी प्रतिभागियों को स्मृति चिह्न, उपहार और प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया। 27 वर्षों से जारी हिंदी मेला सभी के स्नेह, सहयोग और विश्वास का प्रतीक है। इस अवसर पर अवधेश प्रसाद सिंह, डॉ. केयूर मजमूदार, अनिता राय, सुशील पाण्डेय और विनोद यादव आदि उपस्थित थे।

इस पार तक

सुधा ओम ढींगरा



पूरा विश्व दो ही शक्तियों पर टिका है, सकारात्मक और नकारात्मक। दोनों ही मनुष्य के अंदर समाई हैं। सकारात्मक ऊर्जा ही उस अंतिम सत्य की ओर लेकर जाती है, जिसे कुछ लोग बाहर से भीतर खोजते हैं, कुछ उसे भीतर से बाहर तलाशते हैं और कुछ बस भीतर ही उसमें खो जाते हैं। पथ सभी कठिन हैं। बाहरी दुनिया में दिखाई देने वाले रास्ते, तरह-तरह के दर्शन, मीमांसा की भीड़ में खोया मानव अपने भीतर के अंतिम सत्य को पहचान ही नहीं पाता। हर मानव का अंतिम सत्य अदृश्य ही बना रहता है।

दृश्य से अदृश्य का सफ़र
2021

RNI NO. WBHIN/2014/70173

POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

स्मृति-शेष



आनन्द कुमार सिन्हा

(13 नवंबर 1939 - 06 नवंबर 2021)

हावड़ा विद्यार्थी मंच (8/2L No. 8053 of 20/3-2014) 6/2/1, आशुतोष
मुखर्जी लेन, सलकिया, हावड़ा-711106 द्वारा प्रकाशित एवं गोपी कृष्ण पालुई,
शिक्षण द्वारा 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा